सर्मपित वनस्पति विज्ञानी : टॉमस टॉमसन

पक्षी संरक्षण एवं जैव विविधता परियोजना

मानसिक और शारीरिक विकलांगों का पशुओं द्वारा इलाज

कीड़ों का जैव नियंत्रण

अमेरिका के कुछ युवा वैज्ञानिक

वृक्ष (कविता)

अक्टूबर 1991 अंक

वार्षिक मूल्य 25 रुपये प्रति अंक : 2 50 पैसे

विज्ञान परिषद प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 1913; विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
अक्टूबर 1991; वर्ष 77 अंक 7

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
एक प्रति : 2 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

1 संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ युवा वैज्ञानिक : एक परिचय—जीन बाइलेन्स्की
रूपान्तर : राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप

11 डाइनामाइट की खोज—प्रो० रमेशचन्द्र कपूर

14 खान पान से भी जुड़ा है कैन्सर—सुभाष लखेड़ा

17 कीड़ों का जैव-नियन्त्रण—डॉ० अरुण आर्य

20 पक्षी संरक्षण एवं जैव विविधता परियोजना—सतीश कुमार शर्मा

23 मानसिक और शारीरिक विकलांगों का पशुओं द्वारा इलाज—उदय ठाकुर

24 वृक्ष (कविता)—इरा अग्रवाल

25 एक समर्पित वनस्पति विज्ञानी : टॉमस टॉमसन—डॉ० रमेशचन्द्र श्रीवास्तव

26 कार्सिनोजन : कैन्सर उत्पादक अभिकर्मक—कु० अंजना असावा, डॉ० पी० बी पंजाबी एवं डॉ० सुरेश अमेटा

30 परिषद् का पृष्ठ

30 विज्ञान वक्तव्य

प्रकाशक
डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अरुण राय
प्रसाद मुद्रणालय
7ए, बेली एवेन्यू
इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ युवा-वैज्ञानिक : एक परिचय

जीन बाइलेन्स्की

रूपान्तरकार : राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप*

बढ़ती हुई भूमण्डलीय प्रतियोगिता के इस युग में अमेरिका की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ गति निर्धारण का कार्य करती हैं। यू० एस० नेशनल साइंस फाउन्डेशन के अनुसार अमेरिका वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास के लिए जो धनराशि खर्च करता है वह जापान, इंग्लैंड और फ्रान्स की इस मद में संयुक्त रूप से व्यय की गयी राशि से कहीं अधिक है। इस राशि में सैन्य-अनुसंधान के लिए व्यय की गयी धनराशि भी सम्मिलित नहीं है। अमेरिका द्वारा नागरिक अनुसंधान और विकास पर पिछले वर्ष व्यय किये गये 10800 करोड डॉलर की राशि में 7400 करोड़ डॉलर की राशि सैद्धांतिक अनुसंधानों और बेल-प्रयोगशाला ऐसी शोध-संस्थाओं पर व्यय की गई थी।

इस लेख में प्रस्तुत युवा वैज्ञानिकों का चयन 'फारचून' पत्रिका द्वारा अमेरिकी विश्वविद्यालयों, प्रयोगशालाओं तथा संस्थानों के वरिष्ठ वैज्ञानिकों द्वारा नामित वैज्ञानिकों की सूची के आधार पर किया गया है। यह सभी वैज्ञानिक महत्वपूर्ण खोजें कर चुके हैं और उनमें से अनेक 2000 ई० तक 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त करने वाले वैज्ञानिकों की सूची में स्थान प्राप्त कर चुके होंगे।

इनमें से कुछ वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का व्यावहारिक उपयोग भी होने लगा है। जहाँ इलेक्ट्रॉन की खोज के सौ वर्षों के पश्चात् ही इलेक्ट्रॉनिकी का विकास सम्भव हुआ था वहीं आज जैव-तकनीक और क्वांटम यांत्रिकी की प्रयोगशालाओं में होने वाले अनुसंधान सेकेन्डों में कारखानों तक पहुँच जाते हैं। 'शुद्ध विज्ञान' और व्यावहारिक तकनीक के क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों का अलगाव खत्म हो चुका है। सजग और चुस्त संस्थान इन दोनों क्षेत्रों में व्यावहारिक उपयोग को प्रोत्साहित करते हैं।

महान मस्तिष्कों के लिए अमेरिका भी अभी चुम्बक की भाँति कार्य करता है। प्रस्तुत 12 वैज्ञानिकों में से 3 दूसरे देशों के निवासी हैं। अमेरिका में वे उच्च-स्तरीय प्रयोगशालाओं और समान मस्तिष्कों से बौद्धिक उद्दीपन प्राप्त करने के लिये आते हैं। अमेरिका के वैज्ञानिक और अभियांत्रिक समुदाय में लगभग 10 लाख लोग हैं। बाहर से आने वाले वैज्ञानिक इस देश में इसलिए आते हैं कि वे यहाँ अपने अनुसन्धान की गुणवत्ता के कारण कम आयु में ही प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं तथा अनुसन्धान की राशि में प्रतिवर्ष वृद्धि होने के कारण उन्नत तकनीकों का प्रयोग सम्भव हो जाता है।

यह लेख 'स्पान' (जून, 1991) पत्रिका में प्रकाशित जीन बाइलेंस्की के लेख 'अमेरिकाज टाप यंग साइंटिस्ट्स' का स्वतन्त्र अनुवाद है। इसके लिए 'विज्ञान' 'स्पान' तथा 'फारचून' पत्रिका के प्रति आभार व्यक्त करता है।

* शिक्षा विभाग, ए० पी० एन० डिग्री कॉलेज, बस्ती, उत्तर प्रदेश

पीटर जी० शुल्ज (34 वर्ष)

बर्कले के रसायनज्ञ **पीटर जी० शुल्ज** ने जीवविज्ञान और वाणिज्य के बीच इतनी महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ी है जिसकी तुलना रोटी बनाने में यीस्ट की भूमिका से की जा सकती है। उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि **विषाणुओं (वायरस)** और **जीवाणुओं (बैक्टीरिया)** से लड़ने के लिये शरीर की प्रतिरोधी व्यवस्था जिन प्रोटीनों-प्रतिपिंडों (ऐन्टीबाडीज) का निर्माण करती है उनको रसायनों और औषधियाँ बनाने के लिये उत्प्रेरकों (केटेलिस्ट्स) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

रसायनज्ञों के लिए उत्प्रेरक आधारभूत साधन हैं। प्रकृति के जटिलतम उत्प्रेरक एंजाइम हैं जो पाचन और अन्य जैविक क्रियाओं के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। परन्तु उद्योगों में सामान्यतया अल्प प्रभावी उत्प्रेरकों का उपयोग होता रहा है। उदाहरण के लिये गैसोलीन निर्माण या तेलों के हाइड्रोजनीकरण के लिये धातु उत्प्रेरक प्रयोग में लाये जाते हैं।

पाँच वर्ष पहले शुल्ज ने सम्भावित उत्प्रेरकों के निर्माण के लिए जैविक प्रणालियों के उपयोग का विचार प्रस्तुत किया। उनकी प्रक्रिया का प्रारम्भ उस यौगिक की संरचना के विश्लेषण से होता है जिसको वह तोड़ना चाहते हैं। इस विदलन (क्लीविंग) प्रक्रिया के दौरान प्रारम्भिक यौगिक का प्रत्येक अणु अस्थिर संरचनाओं की स्थिति से-जिनको संक्रमण अवस्थाएँ (ट्रान्जिशन स्टेट्स) कहते हैं—गुजरता है। एक परखनली में शुल्ज इन संरचनाओं से मिलते-जुलते अणु निर्मित करते हैं और तत्पश्चात् उन्हें चूहों में प्रविष्ट कर दिया जाता है। इन अणुओं को बाहर कर देने के लिए चूहे का शरीर प्रतिपिंडों का निर्माण करने लगता है। निष्कर्षण और शुद्धीकरण के पश्चात् यह प्रतिपिंड मूल यौगिक के विदलन के लिये शक्तिशाली उत्प्रेरक सिद्ध होते हैं।

अन्य सहयोगियों के साथ कार्य करते हुए शुल्ज ने ऐसे उत्प्रेरक-प्रतिपिंडों का निर्माण कर लिया है जिनके उपयोग से ईस्टर अणुओं—जो औषधि निर्माण के महत्वपूर्ण घटक हैं—का तीव्र विभाजन किया जा सकता है। इससे ऐसी औषधि के निर्माण की भी सम्भावना है जिससे कोलेस्टेरॉल चकत्तों को घोला जा सकेगा। शुल्ज को नेशनल साइंस फाउन्डेशन द्वारा 1988 का श्रेष्ठ युवा वैज्ञानिक घोषित किया गया था। वे कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर हैं।

मार्क ए० रीड (35 वर्ष)

अत्यन्त तीव्र गति से मानव मस्तिष्क पदार्थ की सूक्ष्मता अभिव्यक्ति पर अधिकार प्राप्त कर रहा है। भौतिक विज्ञानी **मार्क ए० रीड** ने अकेले इलेक्ट्रॉन को पकड़ने और उसकी गति के नियन्त्रण में करने में सफलता प्राप्त की है। उनका उद्देश्य ऐसे सूक्ष्मतम संगणक-स्मृति और तर्क कोण बनाता है जो सामान्य आकार के बिन्दु (फुलस्टाप) के आकार में लगभग 10 करोड़ की संख्या में समा सके।

तीन वर्ष पूर्व टेक्सास इस्ट्रूमेन्ट्स सेन्ट्रल रिसर्च लेबोरेटरी, डॅलास में रीड ने प्रथम क्वान्टम-डॉट—जिसकी एक सतह दस परमाणु-व्यासों के बराबर हैं—निर्मित किया। गैलियम आर्सेनाइड और अन्य सम्बन्धित वस्तुओं से बनी हुई सैन्डविच प्रकार की रचना में जटिलतम चिप-इचिंग तकनीक का प्रयोग करके उन्होंने मीनारों से मिलती-जुलती (केवल रूप में) रचनाएँ बनाई जिन्हें क्वान्टम डॉट पुकारा गया। इस संरचना पर अत्यन्त अल्प-विभव के प्रभाव से रीड ने इसके भीतर एक इलेक्ट्रॉन कैद करने में सफलता प्राप्त की।

लघुता के इस स्तर पर क्वान्टम प्रभावों का शासन है। कण की अपेक्षा तरंग की भाँति व्यवहार करते हुए इलेक्ट्रॉन इस क्वान्टम-पिंजड़े में टकराता रहता है। क्वान्टम-डॉट के सिरों पर विभव का परिवर्तन इस पिंजड़े को इलेक्ट्रॉन के लिये 'अदृश्य' कर देता हैं और इलेक्ट्रॉन बाहर आकर गैलियम आर्सेनाइड संरचना में, जिसको क्वान्टम वायर कहते हैं, कहीं भेजा जा सकता है।

क्वान्टम डॉट का उपयोग अब तक के लघुतम स्मृति-कोष (मेमोरी-सेल) के रूप में किया जा सकता है। इलेक्ट्रॉन की उपस्थिति द्विअंक पद्धति (बाइनरी) के 1 या Yes को प्रदर्शित कर सकती है, इसकी अनुपस्थिति 0 या NO को प्रदर्शित कर सकती है। अनेक वैज्ञानिकों का विश्वास है कि संगणक चिप्पियों (चिप्स) में इस प्रकार के डॉटों का प्रयोग एलेक्ट्रॉनिकी में क्रान्ति ले आने में सफल होगा। पारम्परिक अर्द्धचालक चिप्पियाँ जो इलेक्ट्रॉन प्रवाह को निर्देशित करती हैं—का लघ्वीकरण (मिनिएचराइजेशन) इस दशाब्दी के मध्य तक आश्चर्यजनक स्थिति में पहुँच जायेगा। क्वान्टम-चिप्पियों के उपयोग से न केवल छोटे आकार के संगणक बन सकेंगे वरन् इनसे विशाल क्षमता वाली अखरोट के आकार की स्मृति इकाइयों का निर्माण भी सम्भव होगा।

परन्तु क्या क्वान्टम-चिप्पियों का औद्योगिक उत्पादन सम्भव है? प्रश्न का उत्तर अभी रीड के पास भी नहीं है। "अभी तो" येल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रीड का कहना है—"यह संरचनाएँ क्वान्टम यान्त्रिकी की प्रयोग-शालाएँ हैं, अत्यन्त मनोरंजक वस्तुएँ।"

ब्जारने स्ट्राउस्ट्रप (39 वर्ष)

ब्जारने स्ट्राउस्ट्रप का जन्म डेनमार्क में हुआ। बाल्यावस्था में उनकी रुचि पढ़ाई-लिखाई में नहीं थी परन्तु एक अध्यापक ने उन्हें गणित के चमत्कारी और रहस्यमय संसार की ओर प्रेरित कर दिया जिससे वह संगणकों से जुड़ गए। कैम्ब्रिज में अपने शोध कार्य के दौरान ही वे बेल प्रयोगशाला के सेवायोजकों की दृष्टि में आये और 1979 में वे उसी संस्थान से जुड़ गये।

थोड़े वर्षों बाद ही स्ट्राउस्ट्रप ने एक नवीन संगणक भाषा (++) का आविष्कार करके वैज्ञानिक जगत् को चौंका दिया। C++ धीरे-धीरे संगणक जगत् की सार्वदेशिक भाषा का स्थान लेती जा रही है। यह साफ्टवेयर क्रान्ति जिसे वस्तुन्मुखी प्रोग्रामिंग कहा जाता है, का एक अंग है। पारम्परिक रूप में प्रोग्राम-निर्माता प्रक्रियाओं की जटिलताओं की एक रेखीय, क्रमबद्ध निर्देशों के रूप में प्रस्तुत करते थे, जिनको संगणकों का सरल परन्तु अत्यन्त त्वरित गति से कार्य करने वाला मस्तिष्क, अनुगमन कर सकता था। यह उपागम आर्थिक दृष्टि से खर्चीला था और अधिक समय की अपेक्षा रखता था। वस्तुन्मुखी प्रोग्रामिंग यन्त्र से मानवीय अन्तर्क्रिया को सरल करने में समर्थ होता है, क्योंकि इसमें संगणक मानवीय विचार-प्रक्रिया के अनुरूप कार्य करते हैं। प्रोग्राम अभिकर्ता को इससे ऐसे साधन प्राप्त हो जाते हैं जिनको वह अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार उपयोग कर सकता है।

C++ का उपयोग बढ़ रहा है और प्रत्येक आठ महीने में इसके उपयोगकर्ताओं की संख्या दूनी हो जा रही है। सूपर कम्प्यूटरों से लेकर वैयक्तिक संगणकों तक इसका उपयोग हो रहा है। अमेरिका C++ फुटकर रूप में 100 डॉलर से कम मूल्य में प्राप्त की जा सकती है। ऐपिल की मैकिन्तोश लाइन्स के बहुविध ग्राफिक्स और हेवलेट पैकर्ड तथा सन माइक्रोसिस्टम्स के उत्पादनों में इसका व्यवहार किया जा रहा है। उन्नतिशील देशों में भी C++

का प्रयोग तीव्र गति से वृद्धि प्राप्त कर रहा है, यहाँ तक कि स्ट्राउस्ट्रप की C++ सम्बन्धी पुस्तक का सर्वोक्रोशियन भाषा में अनुवाद पूरा हो चुका है।

मार्क आर० मान्टमिनी (34 वर्ष)

मस्तिष्क अरबों की संख्या में वैद्युतिक क्रिया करते हुए न्यूरॉनों का भंडार है। जिन रसायनों के द्वारा यह क्रियाएँ सम्भव और नियन्त्रित होती हैं, वे हमारे स्वास्थ्य, संवेगों और विचारों को जिनके सम्बन्ध में विज्ञान के जानने की प्रक्रिया अभी प्रारम्भ की है, प्रभावित करते हैं। लाजोला, कैलीफोर्निया में स्थित साल्क संस्थान में अपनी प्रयोगशाला में कार्यरत मान्टमिनी ने एक मुख्य मस्तिष्कीय-रसायन सोमैटोस्टैटिन- के निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण किया है। सोमैटोस्टैटिन की अधिकता बौनापन, विक्षिप्तज अरुचि (एनोरैक्सिया नर्वोसा) तथा भोजन के प्रति तीव्र अरुचि और इसकी कमी उपचारात्मक अवसाद (डिप्रेशन) तथा आल्ज्हाइमर रोग के ध्वंसात्मक प्रभावों को उत्पन्न करती है।

मस्तिष्कीय कोषों के आन्तरिक जीन कणों के अध्ययन द्वारा मान्टमिनी ने उद्दीपकों-उदाहरण के लिये काफी पानी का-डी एन ए-अंश पर कैसे प्रभाव पड़ता है और इससे सोमैटोस्टैटिन का निर्माण किस प्रकार प्रारम्भ होता है, इसे प्रदर्शित किया है। एक विशेष प्रकार के आणविक स्विच द्वारा जीन कण सक्रिय और निष्क्रिय किया जाता है। मान्टमिनी ने इस अणु का विश्लेषण किया और यह दिखाया कि कैसे इसको सक्रिय और निष्क्रिय किया जा सकता है। यह ज्ञान अल्ज्सहाइमर रोग के उपचार की दिशा में एक उपयोगी पद हो सकता है।

मान्टमिनी का अनुसन्धान सामान्य रोगों जैसे जुकाम के लिए भी औषधियाँ खोज सकता है। जुकाम और अन्य विषाणुओं में भी इस प्रकार के आणविक स्विच होते हैं—यदि औषधियों में इन अणुओं के स्थान पर निष्क्रिय अणु स्थानापन्न कर दिये जायें तो जुकाम के विषाणुओं का पुनरुत्पादन रोका जा सकता है।

मान्टमिनी जिनका बचपन लेविस्टन, मेन में बीता, एक चिकित्सक बनना चाहते थे। उन्होंने मेडफोर्ड, मैसाचुसेट्स के टफ्ट्स विश्वविद्यालय में औषधि-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। उसके पश्चात् वे न्यूरोरसायन के क्षेत्र में इस आशा से आये कि वे अधिक लोगों की सहायता कर सकेंगे। सम्भव है उनकी यह आशा चमत्कारपूर्ण रीति से सत्य हो।

शैरोन आर० लांग (39 वर्ष)

शैरोन आर० लांग ने एक क्षेत्र के उपकरणों और साधनों का दूसरे क्षेत्रों में उपयोग करने में विलक्षण योग्यता का परिचय दिया है। 'फारचून' द्वारा चुने गये अन्य वैज्ञानिकों के समान ही उन्होंने प्रारम्भ में अध्ययन-विषयों के क्षेत्र बदले। कैलटेक, येल और हार्वर्ड विश्वविद्यालयों में उन्होंने रसायनशास्त्र, विकासात्मक जीवविज्ञान और आणविक-जेनेटिक्स का अध्ययन किया है। इस समय वे स्टैन्फोर्ड विश्वविद्यालय में जीवविज्ञान के सहायक प्रोफेसर हैं।

प्रत्येक वर्ष दुनिया के किसान अपनी फसलों के लिए लगभग 8 करोड़ टन नाइट्रोजन-उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। लांग के अनुसन्धानों से फसलों के लिए बाह्य उर्वरकों के स्थान पर आन्तरिक उर्वरकों के प्रयोग की

सम्भावना है। सोयाबीन और अल्फाल्फा जैसी फसलें अपने उर्वरक **रिजोबियम जीवाणुओं** के सहजीवन से स्वयं उत्पन्न करती हैं। यह जीवाणु, जो पौधे की जड़ों में बनी गाँठों में रहते हैं, वायु से नाइट्रोजन का शोषण कर लेते हैं—जो कार्य पौधा नहीं कर सकता, और इसे अमोनिया के रूप में पौधे को प्रदान कर देते हैं। पौधा अमोनिया का उपयोग करता है और बदले में जीवाणुओं को आवासीय सुविधा और प्रकाश संश्लेषण द्वारा प्राप्त शर्कराएँ प्रदान करता है।

पौधे द्वारा भूमि में जीवाणु की पहचान और उसके लिये गाँठ-निर्माण जीवाणु और पौधे के मध्य रासायनिक संप्रेषण पर आधारित प्रक्रिया है। यदि इस संप्रेषण प्रक्रिया का सूक्ष्म-विश्लेषण किया जा सके तो उससे मक्का, गेहूँ और चावल की फसलों में अपने उर्वरक बनाने के लिये प्रक्रिया विकसित की जा सकती हैं। आणविक जीव विज्ञान और वैद्युतिक शरीर विज्ञान के कल्पनापूर्ण संयोग से लांग रिजोबियम-अल्फाल्फा संदेश का रहस्योद्घाटन करना चाहती हैं। चार वर्ष पूर्व उन्होंने अपने सहकर्मियों के साथ पौधे का प्रारम्भिक संकेत, जिसके पश्चात् संदेश प्रारम्भ होता है—खोजा था। यह फ्लेबोनायड-प्राचीन रोमनों द्वारा प्रयुक्त एक पीला चमकदार रंग-अणु था। हमारी भाषा में इसकी उपस्थिति का संदेश है "**रिजोबियम**, आओ कार्य प्रारम्भ करो।"

लांग का नवीन अनुसन्धान **रिजोबियम** द्वारा उत्पन्न किये गये उस रसायन की खोज है जो पौधे के निमंत्रण के उत्तर में जीवाणु का उत्तर होता है, "मैं आने के लिए तैयार हूँ, मेरे आवास की व्यवस्था करो।"

यदि अल्फाल्फा पौधे के वे जीन जिनसे **रिजोबियम** को आकर्षित करने, उनके लिए जड़ों में गाँठोंका निर्माण करने की प्रक्रिया (अथवा सम्पूर्ण कार्यक्रम) संचालित होती है, अन्य पौधों में प्रविष्ट किये जा सकें तो कृषि के क्षेत्र में क्रान्ति हो सकती है।

बोनी ऐन वालेस (39 वर्ष)

पुटीय तन्तुमयता (सिस्टिक फायब्रोसिस), कैन्सर तथा हृद रोग ऐसे घातक रोगों के सम्बन्ध में यह स्वीकार किया जाता था कि वे शरीर के कोषों में पोषक तत्वों तथा अन्य पदार्थों का जाना बाधित कर देते हैं। यह कार्य किस प्रकार सम्पन्न होता है, यह प्रश्न शोधार्थियों के लिये उलझाने वाली समस्या रही है। 1988 में, **बोनी ऐन वालेस** ने इस समस्या का समाधान उस अणु का सूक्ष्म विश्लेषण करके प्राप्त किया जो कोषीय-भित्ति में आपूर्ति मार्ग का कार्य करता है। उन्होंने इस अणु के 520 परमाणुओं और 602 परमाण्विक बन्धों का लेखाचित्र बनाया तथा यह भी ज्ञात किया कि यह अणु अपनी संरचना में परिवर्तन करके केन्द्र से एक मार्ग खोल देने और बन्द करने में समर्थ है।

जब यह अणु पोषक तत्वों को मार्ग दे रहा होता है तो यह छोटा और गोल-मटोल हो जाता है जिससे इसके केन्द्र-छिद्र से विद्युत् आवेशित कण-आयन-प्रवाहित हो सकें। दूसरी स्थितियों में यह लम्बा और पतला हो जाता है जिससे आयनों का प्रवाहन नहीं हो पाता।

वालेस, ग्रीनविच, कनेक्टीकट में भी जब वह हाई स्कूल की छात्रा थी प्रक्रियाओं के 'क्यों और कैसे' जानने में उत्सुक रहती थीं। उन्होंने रेनसीलर पॉलीटेकनीक इंस्टीट्यूट, ट्राय, न्यूयार्क से स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् येल विश्वविद्यालय से शोध-उपाधि प्राप्त की और रेनसीलर में प्रोफेसर हो गयीं। आयन-मार्गों के अध्ययन के

लिए उन्होंने ग्रैमीसीडीन को चुना जो ऐन्टीबायोटिक है परन्तु जिसके अन्य अनुषंगी प्रभावों के कारण उसका उपयोग नहीं किया जाता। X-किरण विवर्तन तथा अवरक्त वर्णक्रम विज्ञान की तकनीकों का उपयोग करते हुए वालेस और उनके सहयोगियों ने ग्रैमीसीडीन के अणु से सीजियम आयनों का प्रवाह निरीक्षित किया।

वालेस के अनुसन्धान के तात्कालिक परिणाम ग्रैमीसीडीन के उपयोग को आधार दे सकते हैं। यह औषधि जीवाणुओं में छिद्र करके अपना कार्य करती है जिससे जीवाणु के आयन बाहर चले जाते हैं और जीवाणु हवा निकले हुए गुब्बारे की भाँति पिचक जाता है। ग्रैमीसीडीन के अन्य दुष्प्रभाव मानवीय कोष-भित्तियों पर इसी प्रकार की प्रतिक्रिया के कारण हैं। वालेस अपने सहयोगियों के साथ इस समस्या पर कार्यरत हैं कि ग्रैमीसीडीन अपनी घातक प्रक्रिया में चयनित अणुओं को ही प्रभावित करें। ऐसे हजारों प्रवाह-अणु अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं। पुटीय तन्तु-मयता, जिससे प्रतिवर्ष 17000 अमेरिकी प्रभावित होते हैं, का कारण फुफ्फुस-कोषों में क्लोराइड आयनों का अनियमित प्रवाह है। यह रोग किस प्रकार प्रवाह-पथ-अणुओं को हानि पहुँचाता है, इसकी समझ से अनुसन्धानिकों को उपचार का एक मार्ग मिल सकता है।

सूसन सोलोमन (34 वर्ष)

सूसन सोलोमन जिनका लालन-पालन शिकागो के मध्यमवर्गीय क्षेत्र में हुआ, जैक्स काउस्टयू के अभियानों के टेलीविजन-प्रदर्शनों से विज्ञान की ओर मुड़ीं। आज उनका रसायन के क्षेत्र में अनुसन्धान पृथ्वी पर जीवन के संरक्षण से सम्बन्धित है।

1985 में सूसन सोलोमन यू० एस० नेशनल ओशियानिक ऐण्ड एटमासफेरिक ऐडमिनिस्ट्रेशन, बाउल्डर, कोलोरेडो में कार्यरत थी, जब वैज्ञानिकों ने दक्षिणी ध्रुव के ऊपर वातावरण में ओजोन पर्त में छिद्र का पता लगाया। ओजोन की पर्त में यह अन्तराल 32000 से 74000 फुट की ऊँचाइयों के बीच प्राप्त हुआ था। सामान्यतया ओजोन पर्त सूर्य की पराबैंगनी किरणों से पृथ्वी की रक्षा करती है। सीमित मात्रा में भी यह किरणें त्वचा का कैन्सर उत्पन्न कर सकती हैं और यदि अबाधित रूप से यह पृथ्वी पर पड़ें तो इनसे पृथ्वी की सम्पूर्ण जीवन-प्रणाली नष्ट हो सकती है। "यह खोज एक भयानक आघात था" सोलोमन कहती हैं "हम 50 से 100 वर्षों की अवधि में ओजोन पर्त की 5-10 प्रतिशत हानि की भविष्यवाणी कर रहे थे। अचानक ज्ञात हुआ कि यह हानि 50 प्रतिशत की सीमा में है।"

वैज्ञानिकों ने इस प्रक्रिया के पीछे क्लोरोफ्लोरोकार्बनों (CFCs) के प्रभावों का अनुमान व्यक्त किया। यह पदार्थ रेफ्रीजरेटरों, एयरोसोल डिब्बों और अर्द्धचालकों के निर्माण में प्रयुक्त होता है। परन्तु ओजोन की पर्त को यह किस प्रकार प्रभावित करता है, यह तब तक रहस्य ही था। सोलोमन के लिए भी।

समस्या की अन्तर्दृष्टि सोलोमन ने सैन फ्रांसिस्को में ध्रुवीय समतापमंडलीय मेघों (पोलर स्ट्रैटोस्फियर क्लाउड्स) से सम्बन्धित एक व्याख्यान में प्राप्त की। उस समय तक ये चमकदार बादल, जिनको सीपिया मेघ कहा जाता था, केवल सामान्य जिज्ञासा की वस्तु थे। परन्तु जैसे व्याख्यानकर्ता ने इन बादलों के स्लाइड-चित्र प्रदर्शित किये सोलोमन ने यह सोचना प्रारम्भ किया कि अंटार्कटिक क्षेत्र में बहुलता से पाये जाने वाले इन बादलों की सतह पर सी एफ सी-व्युत्पन्नों की क्रिया से ओजोन का नष्टीकरण होता है। आँकड़ों के एकत्रीकरण के लिये सोलोमन ने एक

अंटार्कटिक अभियान आयोजित किया और एक वर्ष में ही उनके सिद्धान्त की पुष्टि कर ली गई। औद्योगीकृत देशों ने सी एफ सी के उपयोग पर नियन्त्रण करना प्रारम्भ किया और 1989 में सोलोमन को वाणिज्य-विभाग के 'स्वर्ण पदक' से सम्मानित किया गया।

आजकल सोलोमन आर्कटिक क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित कर रही हैं जहाँ ओजोन की पर्त के विनष्टीकरण से उत्तरी गोलार्द्ध के प्रभावित होने की आंशका है। यद्यपि प्रकृति द्वारा ओजोन की कमी को पूरा करने की प्रक्रिया अनवरत चलती है परन्तु मनुष्य द्वारा की गई हानि की तुलना में यह प्रक्रिया बहुत धीमी होती है। इस समस्या का सोलोमन की दृष्टि में एक ही समाधान है कि ओजोन पर्त को हानि पहुँचाने वाले रसायनों के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाये। इस दिशा में उत्पादकों द्वारा सी एफ सी के स्थान पर उपयोग किये जाने वाले यौगिकों की खोज की यह प्रशंसा करती हैं।

पाल ए० बाटमली (37 वर्ष)

1977 की एक दोपहर, महीनों की तैयारी के बाद **पाल ए० बाटमली** ने अपना हाथ प्रायोगिक नाभिकीय चुम्बकीय अनुनाद (न्यूक्लियर मैग्नेटिक रेसोनैन्स) यन्त्र के भीतर रख दिया। रासायनिक विश्लेषण की तकनीक के विकास के बावजूद बाटमली और उनके सहयोगियों का विश्वास था कि यह उपकरण मानव शरीर के भीतर देखने की खिड़की की तरह उपयोग किया जा सकता है। इस प्रयोग में उनकी कलाई का एक अनुप्रस्थ काट जो कम्प्यूटर के, यन्त्र से जोड़ दिया गया था, के पर्दे पर स्पष्ट हो गया था।

मेलबोर्न, आस्ट्रेलिया के निवासी बाटमली ने रसायन-विज्ञान के पश्चात् भौतिकी का अध्ययन किया। प्रारम्भ से उन्होंने नार्टिंघम विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड में कार्य प्रारम्भ किया। दूसरे ही वर्ष वे अमेरिका आ गये। दो वर्षों तक जान हॉपकिन्स विश्वविद्यालय, बाल्टीमोर में कार्य करने के बाद वे जनरल इलेक्ट्रिक के न्यूयार्क अनुसन्धान और विकास केन्द्र से जुड़े। 1982 तक उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ एक शक्तिशाली चुम्बकीय अनुनाद उपकरण बना लिया था जो मानव-मस्तिष्क के उच्च-विभेदन प्रतिबिम्ब निर्मित कर सकता था।

आज के विशालकाय चुम्बकीय अनुनादी प्रतिबिम्बन (MRI) यन्त्र चिकित्सकों को बिना X-किरणों, शल्य-क्रिया अथवा रेडियोसक्रिय पदार्थों के उपयोग के शरीर के भीतर देखने और रोग का निदान करने में सहायता करते हैं। बाटमली चुम्बकीय अनुनाद वर्णक्रम विज्ञान (मैग्नेटिक रेसोनैन्स स्पेक्ट्रॉस्कोपी) के अग्रदूत हैं। उनका उद्देश्य चुम्बकीय अनुनादी प्रतिबिम्बन (MRI) तकनीक के द्वारा शरीर की स्थिति की जाँच के अतिरिक्त जैव-रसायनिक परिवर्तनों, जो बहुधा रोग के लक्षणों के साथ और कभी-कभी पहले भी उत्पन्न होते हैं, की जानकारी प्राप्त करना है।

1985 में बाटमली और उनके सहयोगियों ने धड़कते हुए हृदय की प्रक्रियाओं का चुम्बकीय अनुनादी प्रतिबिम्बन-विश्लेषण प्रस्तुत किया। इस प्रक्रिया में हृदय और उसकी गतिशीलता की जानकारी रासायनिक सह-उत्पादों की गति-दिशा और उनके वितरण के ज्ञान से प्राप्त की गयी। ऐसी सूचनायें हृद-रोग विशेषज्ञों को हृदय के उन भागों के सम्बन्ध में जानकारी दे सकती है जो हार्ट-अटैक से प्रभावित हो गये हों अथवा किसी औषधि के प्रभाव में हों—ऐसी आन्तरिक प्रक्रियाएँ किसी भी अन्य नैदानिक तकनीक से निरीक्षित नहीं की जा सकती हैं। इसी विधि के उपयोग से अर्बुद विज्ञानी (आन्कालोजिस्ट) अर्बुदों पर औषधियों के प्रभाव का निरीक्षण कर सकते हैं।

एक ही चुम्बकीय अनुनादी प्रतिबिम्बन उपकरण, जिसमें रोगी का विशालकाय चुम्बकों के मध्य में रखा जाता है, प्रतिबिम्बन और वर्णक्रम-विश्लेषण का कार्य कर सकता है। यह चुम्बकीय क्षेत्र इतना शक्तिशाली होता है कि रोगी के शरीर के परमाणुओं के नाभिक अपने को इसके समान्तर स्थापित कर लेते हैं। यन्त्र में स्थित एक कुण्डली के द्वारा इन नाभिकों पर उच्च आवृत्ति की रेडियो तरंगें उनमें अनुनाद उत्पन्न करती हैं। एक अल्प रेडियो संकेतों को विस्तारित करके उनसे प्रतिबिम्ब अथवा नैदानिक तालिका बनाई जाती है। चिकित्सकीय वर्णक्रम-विज्ञान का उपयोग उपचारात्मक प्रयोगों में अभी प्रारम्भ ही हुआ है, परन्तु जब इसकी कमियाँ दूर कर ली जायेंगी और इसके परिणामों को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकेगा तो इससे चिकित्सा-विज्ञान रोगों के तत्काल निदान की स्थिति में प्रवेश करने में सफल हो सकेगा।

डोनाल्ड एम० ईग्लर (37 वर्ष)

400 ई० पू० के आस-पास यूनानी दार्शनिक **डेमोक्रीटस** ने एक 'अ-खण्डनीय' पदार्थ-कण की कल्पना की। उसने उसे ऐटम की संज्ञा दी। मानवीय इतिहास की चौबीस शताब्दियों के बाद ही यह परमाणु नामक कण पकड़ में आ पाया और इसकी गति को नियन्त्रित किये जाने की स्थिति आई। यह घटना भौतिक विज्ञानी **डोनाल्ड एम० ईग्लर** ने आई० बी० एम० आल्मादेन रिसर्च सेन्टर, सैन जोंस, कैलिफोर्निया द्वारा पिछले वर्ष सम्भव हो सकी। वह केवल अकेले परमाणुओं को गतिशील करने में ही सफल नहीं हुए, उन्होंने उन्हें पुरातन संरचनाओं में एकत्र करने में भी सफलता प्राप्त की।

ईग्लर ने आई० बी० एम० के 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त एक आविष्कार का उपयोग किया। यह आविष्कार था—स्कैनिंग टनेलिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप। 1980 के दशक में विकसित इस उपकरण ने पहली बार किसी सतह पर स्थित परमाणुओं को स्पष्ट रूप से देखे जाने की स्थिति उत्पन्न की। इसमें एक सूक्ष्म धातु के सूक्ष्मतर को निरीक्षित वस्तु के निकट रख कर उनके मध्य निम्न विभवान्तर उत्पन्न किया जाता है। विभवान्तर के कारण इलेक्ट्रॉन प्रवाहित होने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। इस अन्तराल को पार करने की क्वान्टम प्रक्रिया को टर्नेलिंग कहते हैं। जैसे-जैसे सूक्ष्म धात्वाकार तार गति करता है, सतह के परमाणुओं की आकार सीमा स्पष्ट होने लगती है।

वैज्ञानिकों का विश्वास था कि यह सूक्ष्मदर्शी परमाणुओं की पुनर्व्यवस्था के लिये उपयोग किया जा सकता है। 1987 में बेल प्रयोगशाला ने जर्मेनियम के एक परमाणु की गति के निरीक्षण की घोषणा की परन्तु इस गति का नियन्त्रण करना सम्भव नहीं हो सका। इसका कारण यह था कि सामान्य तापक्रम पर परमाणु अधिक ऊर्जाशील होते हैं और थोड़े से परिवर्तन से उछलने लगते हैं। ईग्लर ने सूक्ष्मदर्शी को परमशून्य तापक्रम के निकटवर्ती तापक्रम पर शून्य वातावरण में कार्य करने के लिए संशोधित किया। उन तापक्रमों पर परमाणु अपेक्षाकृत कम सक्रियता प्रदर्शित करते हैं। इस कार्य में उन्हें पाँच वर्ष लगे।

प्रयोग में एक प्लैटिनम पट्टिका पर जेनन गैस की बौछार की गई। सूक्ष्मदर्शी ने जेनन परमाणुओं को प्लैटिनम पट्टिका पर इस प्रकार प्रदर्शित किया जैसे एक हिमीकृत खेल के मैदान में गेंद बिखरे पड़े हों। ईग्लर ने सूक्ष्मदर्शी की नोक को निकट और दूर रख कर परमाणुओं की स्थिति के परिवर्तन में भी सफलता प्राप्त की।

उनका पहला प्रदर्शन चमत्कार के लिए ही था। उन्होंने 35 परमाणुओं को आई० बी० एम० के संकेत में पुनर्व्यवस्थित किया। उसके पश्चात् उन्होंने परमाणु समूह बनाने में सफलता प्राप्त की। ऐसी परमाणु रचना अत्यन्त लघु इलेक्ट्रॉनिक परिपथ निर्मित कर सकती है। आजकल ईग्लर एकाकी परमाणुओं को अपनी इच्छानुसार एकत्रित करके कार्बन डाइऑक्साइड का अणु निर्मित करने की प्रक्रिया में संलग्न हैं।

माइकेल एच० फ्रीडमैन (38 वर्ष)

गणित के जादूगर **फ्रीडमैन** अपने विद्यालयी जीवन में संख्याओं से घृणा करते थे, उन्हें लगता था कि संख्याएँ कृत्रिम वस्तुयें हैं और इनसे चिन्तन बाधित होता है। ज्यामितीय आकारों में चिन्तन की क्षमता उनकी महान प्रतिभा है और इसी के अवलम्बन से उन्होंने स्थान-विज्ञान (टोपॉलॉजी) में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं और उन्हें नेशनल मेडल ऑव साइंस तथा मैकआर्थर फाउंडेशन द्वारा पाँच वर्ष के लिए प्रदान की जाने वाली प्रतिभाशाली छात्रवृत्ति (जीनियस ग्रान्ट) से सम्मानित किया गया।

स्थान-विज्ञान या टोपॉलॉजी को बहुधा रबर-चादर-ज्यामिति (रबर शीट ज्यामेट्री) पुकारा जाता है। यह शुद्ध गणित की वह शाखा है जो वस्तुओं के स्वरूप और आकार के स्थान पर उनके गुणों से सम्बन्धित है। स्थान विज्ञानी वस्तु के उन गुणों का अध्ययन करते हैं जो वस्तु के खींचने, तोड़ने-फोड़ने और विरूपित करने से नष्ट नहीं होते। यदि इसी दृष्टि से वस्तुओं को देखा जाये तो काफी का प्याला और डाफनट मिठाई (Doughnut) एक प्रकार की वस्तुयें हैं क्योंकि दोनों में ही एक-एक छिद्र है।

स्थान-विज्ञान का एक उद्देश्य बहुआयामी तलों का वर्गीकरण करना है। एक शताब्दी पूर्व फ्रांसीसी गणितज्ञ **हेनरी प्वायंकेयर** ने बहुआयामी तलों (मैनीफोल्ड्स) के वर्गीकरण की एक बुद्धिमत्तापूर्ण विधि प्रस्तुत की। वह तल पर एक धागे के फन्दे की कल्पना करता था और विचार करता था कि वह कितना संकुचित किया जा सकता है। एक गोले पर रखा हुआ छल्ला या फन्दा एक बिन्दु तक सिकोड़ा जा सकता है परन्तु एक डाफनट पर रखे हुए फन्दे को उसके छिद्र से कम छोटा नहीं किया जा सकता। इसी कारण एक वृत्तज वलय (टोरस) और गोला स्थान-विज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों में रखे जाते हैं।

स्थान विज्ञानियों के लिए त्रि-आयामी तल विशेष समस्यायें उत्पन्न करते रहे हैं। उन्हें इतने भिन्न प्रकार से तह किया जाना (फोल्ड करना) और खींचना सम्भव है कि कोई उन्हें वर्गीकृत नहीं कर सका है। प्वायंकेयर ने कुछ सरल परीक्षण निर्धारित किये थे जिनके आधार पर किसी त्रि-आयामी तल को गोला कहा जा सकता था। गणितज्ञों ने पाँच और अधिक आयामों के लिए इसको सिद्ध किया। स्वयं फ्रीडमैन इसे चार आयामों के लिए पुष्ट कर सके। इसमें भी उन्हें सात वर्ष लगे।

फ्रीडमैन की खोज का व्यावहारिक उपयोग अभी दृष्टि में नहीं है परन्तु शुद्ध गणित में बहुत सी ऐसी खोजें होती हैं जिनका ज्ञान किसी विशेष शाखा में उपयोग हो पाता है। फ्रीडमैन जो इस समय सैन दियागो के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं, के अनुसार "सम्पूर्ण गणित में व्यावहारिक सम्भावना होती है।" उनके कथन की पुष्टि में ग्रन्थि सिद्धान्त (नॉट थियरी) का उदाहरण दिया जा सकता है, जो बहुत दिनों तक किसी उपयोग में नहीं आ सकी परन्तु आज उसका उपयोग डी एन ए अणु के विभाजन की व्याख्या करने के लिए किया जा रहा है।

रोडनी ए० ब्रुक्स (35 वर्ष)

आधुनिक इलेक्ट्रॉनिकी की इतनी उन्नत स्थिति में भी सामान्य गृह कार्य में सहायता देने वाले यन्त्र मानव (रोबो) अभी तक क्यों बनाये नहीं जा सके ? मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑव टेक्नोलॉजी के संगणक विभाग के प्रोफेसर आस्ट्रेलिया में जन्मे रोडनी ए० ब्रुक्स का विचार है कि अभी तक यन्त्र मानव अभियन्त्रण (रोबोटिक्स) के विशेषज्ञ त्रुटिपूर्ण दिशा में कार्य कर रहे हैं। वे मानवों के रूप में यन्त्र बनाना चाहते हैं—ऐसे यन्त्र मानव जिनमें मस्तिष्क के रूप में एक संगणक, आँखों के लिये इलेक्ट्रॉनिक दृष्टि और हाथ-पैरों का तालमेल एक केन्द्रीय व्यवस्था के रूप में हो। ऐसे यन्त्र बहुत मँहगे तो हैं ही, उनका उपयोग भी सरल, दुहराये जा सकने वाले कार्यों जैसे वेल्डिग के लिए ही किया जा सकता है।

रोबो-यान्त्रिकी की दुनिया में ब्रुक्स ने अपना आदर्श मनुष्य के स्थान पर कीटों (इन्सेक्ट्स) को मानकर तहलका मचा दिया। यह कीट उच्चस्तरीय प्राणियों की तुलना में अपने मस्तिष्क का बहुत कम उपयोग करते हैं। उनका कूदना, चलना और वातावरण के अन्य उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया स्नायु संस्थान के दूसरे भागों, जो लगभग स्वतन्त्र रूप में कार्य करते हैं, के उपयोग द्वारा सम्भव होता है। ये स्नायु शरीर के निचले भाग पर होते हैं और इनके कार्य को पूर्ण करने के लिए प्रकृति उन्हें अनेक संवेदना-सूचक अंग प्रदान करती है जैसे टिड्डों और पतिंगों के उदर और झींगुरों के अगले पैरों पर विचित्र श्रवणेन्द्रियाँ।

छात्रों की सहायता से ब्रुक्स ने कुछ लघु यन्त्र-मानवों में वितरित बुद्धि (डिस्ट्रीब्यूटेड इंटेलीजेन्स) की अवधारणा का अनुसरण करने का प्रयास किया है। उनके द्वारा निर्मित चंगेज खान नामक एक फुट का यन्त्र मानव अपनी अवरक्त आँखों से किसी मनुष्य को देखकर उसकी ओर सरकता है, अपने खोजी ऐन्टेनाओं से मार्ग की बाधाओं को पहचानता है और पैरों में लगे संवेदन यन्त्रों से ऊपर चढ़ने का प्रयास करता है।

ब्रुक्स कम लागत के यन्त्र-मानव विशेष कार्यों के लिए बनाना चाहते हैं जैसे मंगल की सतह के अन्वेषण के या विशेष यन्त्रों की सफाई के लिये। उनकी कल्पना है कि अति लघ्वाकार यन्त्र मानव रक्त की धमनियों में भी डाले जाएँ जो आन्तरिक शल्य क्रिया सम्पन्न कर सकें। यह असम्भव परिकल्पना भले ही प्रतीत हो परन्तु कुछ लोग इसे सम्भव करने के लिये ब्रुक्स की सहायता में लगे हैं।

एलेन ड्रेसर (42 वर्ष)

सिनसिनाटी के हाइड पार्क के टेलिस्कोप से शनि वलयों को देखने के पश्चात् ही पाँच वर्षीय एलेन ने खगोलविद् बनने का निश्चय कर लिया था। इस समय कार्नेगी वेधशाला, पसाडेना, कैलिफोर्निया में स्टाफ एस्ट्रोनॉमर के पद पर कार्य कर रहे हैं और पारम्परिक खगोल सिद्धान्तों को झकझोर रहे हैं।

एन्ड्रोमीडा मंदाकिनी में एलेन ने एक कृष्ण विवर (ब्लैक होल) खोजने में सहायता की है। कृष्ण विवर एक ऐसी रचना है जो अपने अत्यधिक गुरुत्व के कारण पदार्थ को ही नहीं प्रकाश को भी खींच लेता है। 1986 में एलेन के दल ने एक ऐसी आकाशीय संरचना, जो कृष्ण पदार्थ से बनी है, अप्रत्याशित रूप से विशाल है, तथा पृथ्वी से 20 करोड़ प्रकाश वर्ष दूर है, का पता लगाया। यह आकर्षक पुंज आकाशगंगा और समस्त आकाशीय रचनाओं पर अपने आकर्षण प्रभाव के कारण ही जाना जाता है, वैसे वह पूर्णतया अदृश्य है।

इस आकर्षण पुंज की खोज ने महाविस्फोट सिद्धान्त, जिससे ब्रह्माण्ड की संरचना के प्रारम्भ की कल्पना की जाती है, के सामने भी महत्वपूर्ण प्रश्न खड़े कर दिये हैं। पहले की धारणाओं, जिनमें अन्तरिक्ष में पदार्थ की समांग उपस्थिति का सिद्धान्त स्वीकार किया जाता था, के स्थान पर एलन ने ब्रह्माण्ड की गाँठदार (लम्पी) परिकल्पना प्रस्तुत की है। एलन के अनुसार सम्भवतया महाविस्फोट का कोई कारक हम ठीक से समझ नहीं सके हैं। यह अस्वाभाविक लगता है कि समांग संरचना से ब्रह्माण्ड गाँठदार संरचना में परिवर्तित हुआ होगा। आकर्षण-पुंज जैसी संरचनाओं की निर्मिति से यह प्रतीत होता है कि या तो ऐसी विशाल रचनाएँ प्रारम्भिक ब्रह्माण्ड में उपस्थित रही होंगी या कि फिर ब्रह्माण्ड के निर्माण की प्रक्रिया हमारी गणनाओं की तुलना में अधिक लम्बी रही होगी।

एलेन का कहना है कि "बहुत से लोग ब्रह्माण्ड की विशालता और अपनी लघुता से भयभीत हो जाते हैं। मेरा दृष्टिकोण बिल्कुल विपरीत है। मस्तिष्क हमारी ज्ञात वस्तुओं में सबसे जटिल संरचना है—जटिलता बाहर ब्रह्माण्ड में नहीं, यहाँ है—हमारे जीवविज्ञान और मस्तिष्क में। आश्चर्यजनक घटना यह है कि हम खोज सकते हैं, समझ सकते हैं और ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं।"

●●

डाइनेमाइट की खोज

प्रो० रमेशचन्द्र कपूर

आज से दो हजार वर्षों से पूर्व चीन में बारूद का सर्वप्रथम निर्माण तथा उपयोग हुआ। वर्षों तक यही विस्फोटक युद्ध तथा अन्य प्रयोगों में काम आया। केवल उन्नीसवीं शताब्दी में एक दूसरे विस्फोटक नाइट्रोग्लिसरीन की खोज हुई, जिसके कारण विश्व में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये। इटली के तुरिन विश्वविद्यालय में रसायन के आचार्य सोब्रेरो ने ग्लिसरीन पर नाइट्रिक अम्ल की अभिक्रिया द्वारा इस यौगिक का 1846 में निर्माण किया। इसकी एक बूंद को परखनली में गरम करने पर भयंकर धमाका हुआ। फलस्वरूप सोब्रेरो स्वयं घायल हो गया और भवन को अत्याधिक क्षति पहुंची। साथ ही आश्चर्य का विषय था कि आग में डालने पर नाइट्रोग्लिसरीन बिना किसी विस्फोट हुए जल जाती थी। परन्तु वेग से हिलाने अथवा अत्याधिक गरम करने पर विस्फोट होता था।

उसी वर्ष नाइट्रो-सेलूलोज अथवा गनकॉटन विस्फोट की भी खोज हुई थी। जर्मन रसायनज्ञ शोनबीन ने इसे रुई पर नाइट्रिक एवं सल्फ्यूरिक अम्ल मिश्रण की अभिक्रिया द्वारा बनाया। वह उस समय स्विटजरलैंड के बेसेल विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे।

नाइट्रोग्लिसरीन के अति विस्फोटक गुण के कारण लोग उसे काम में लाने से हिचकते थे। परन्तु स्वीडेन में जन्मे अलफ्रेड नोबेल ने इसमें रुचि ली। उसका ध्येय यह था किसी प्रकार इसे शान्तिपूर्ण विस्फोटों में उपयोग करने लायक बनाया जाय यद्यपि युद्ध में इसके उपयोग की अधिक सम्भावना थी। नोबेल का जन्म एक पुरुषार्थी परिवार में

ए 4/8 रेजिडेंसी रोड, जोधपुर—342001 (राजस्थान)

हुआ था। उसके पिता ने पहले स्वीडन की राजधानी स्टोकहोम में उद्योग लगाये। वहाँ सफलता न मिलने के कारण रूस में जाकर सेंट पीटर्सबर्ग नगरी में उसने अभियांत्रिकी संयंत्र लगाये। उसी काल में क्रीमिया युद्ध भड़क उठा और रूसी सरकार ने उसे जहाज, पनडुब्बियों तथा तारपीडो बनाने के ठेके दिये। कुछ दिन व्यवसाय अच्छा चला परन्तु युद्ध की समाप्ति पर ठेके रद्द हो गये जिससे उसका दिवाला निकल गया। सारा नोबेल परिवार स्वीडेन लौट आया।

अपने समृद्धि के काल में पिता नोबेल ने अपने पुत्रों को उत्तम शिक्षा दिलाई। अलफ्रेड सोलह वर्ष की आयु में ही रसायन विज्ञान में पटु हो गया था। इंजीनियरी की विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए वह अमेरिका में जान एरिकसन के पास गया। जान एरिकसन एक विश्व विख्यात नौसैनिक इंजीनियर था, जो स्वीडेन छोड़कर अमेरिका में बस गया था। अलफ्रेड ने अपने पिता की सेंट पीटर्सबर्ग में स्थित प्रयोगशाला में मुख्यतया रसायन पर काम किया। स्वीडेन लौटने पर उसने नाइट्रोग्लिसरीन के गुणों का अध्ययन आरम्भ किया। 1863 में उसने नाइट्रोग्लिसरीन के अधिस्फोटन पर एक पेटेंट प्राप्त किया। शीघ्र ही 1865 में उसने स्टाकहोम के निकट नाइट्रोग्लिसरीन निर्माण करने का एक कारखाना खोला।

कुछ ही दिन बाद एक भयंकर विस्फोट हुआ और कारखाना ध्वस्त हो गया। अल्फ्रेड का छोटा भाई तथा कुछ कर्मी हताहत हो गये। परन्तु उसने हिम्मत न हारी और मृदु नाइट्रोग्लिसरीन बनाने के कारखाने स्वीडेन तथा नार्वे दोनों देशों में स्थापित किये। उद्योग में खूब लाभ हुआ, किन्तु दुर्भाग्य उसका पीछा करता रहा।

एक नाइट्रोग्लिसरीन से लदा मालवाहक जहाज जर्मनी के हैमबर्ग बन्दरगाह से दक्षिण अमेरिका के चिली प्रदेश की ओर चला। मार्ग में भयंकर धमाका हुआ और जहाज तथा उसके सारे नाविक लापता हो गये। कई रेलगाड़ियाँ इसके विस्फोट का शिकार हो गयीं। स्वाभाविक ही था कि मजदूरों ने नोबेल के माल को ढोने से मना कर दिया। अनेक सरकारों ने इसके निर्माण पर रोक लगा दी।

अकस्मात् 1867 में एक घटना के फलस्वरूप नोबेल की समस्या सुलझ गई। एक दिन कारखाने में नाइट्रोग्लिसरीन से भरे टीन बाहर उतार कर रखे जा रहे थे। टीनों के आपस में झटका न लगने के लिए उन्हें किजेलगूर मिट्टी में रखा जा रहा रहा था। एक टीन में छेद था और उसके द्वारा तरल नाइट्रोग्लिसरीन निकल कर किजेलगूर मिट्टी में मिल गई। संयोग से नोबेल वहाँ पर उपस्थित था। उसने यह देखा कि नाइट्रोग्लिसरीन के किजेलगूर में अवशोषण के फलस्वरूप एक ठोस पदार्थ बन गया। तीव्र बुद्धि नोबेल ने प्रेक्षण के मूल्य को तुरन्त समझ लिया और निष्कर्ष निकाला कि इसी क्रिया से नाइट्रोग्सिलरीन को सुरक्षित रूप में रखा तथा परिवहित किया जा सकता है। प्रयोगों द्वारा यह निष्कर्ष सही निकला। नाइट्रोग्लिसरीन को किजेलगूर जैसे सरंध्री पदार्थ में अवशोषित कर उसे रेल, मोटर अथवा जहाजों द्वारा सुरक्षित अवस्था में भेजना सम्भव हैं, क्योंकि अवशोषित अवस्था में वह विस्फोटित नहीं होती। नोबेल ने इस ठोस पदार्थ का नाम रखा, 'डाइनेमाइट'। उसने सम्पूर्ण विश्व में इसका पेटेंट लिया। इसकी मांग इतनी तीव्रता से बढ़ी कि नोबेल के अनेक देशों में फैले कारखाने मांग को पूरा न कर सके। पर्वतों में सुरंगे बनाने, तेल के कुँए खोदने, खानों को खोदने तथा परिवहन विकास ऐसे कार्यों में डाइनेमाइट अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई।

स्वाभाविक ही था कि नोबेल की आय तीव्र गति से बढ़ी। परन्तु वह फिर भी डाइनेमाइट को अधिक सुरक्षित वनाने की चेष्टा में लगा रहा। उसकी प्रबल इच्छा रही कि शान्तिपूर्ण कार्यों में ही उसका उपयोग हो।

अपनी धन राशि से उसने एक ऐसा पारितोषिक देने की व्यवस्था की है जिसे ऐसे पुरुष अथवा महिला को दिया जाय जो शांति के लिये ठोस योगदान करे।

नोबेल ने अपने धन से रसायन, भौतिकी, आयुर्विज्ञान, साहित्य तथा शांति के पुरस्कारों को प्रति वर्ष देने की व्यवस्था की थी। अब पुरस्कारों में अर्थशास्त्र भी जुड़ गया है। आज भी इन पुरस्कारों को सर्वाधिक प्रतिष्ठित माना जाता है। पाँचवाँ शांति पुरस्कार—नोबेल पुरस्कार इसी महिला को प्रदान किया गया था।

●●

खान-पान से भी जुड़ा है कैंसर

सुभाष लखेड़ा

विज्ञान ने आज अनेक ऐसे खाद्य पदार्थ चिन्हित किये हैं जिनका सीधा सम्बन्ध कैंसर से है। इन्हें जान कर और खान पान में सावधानी बरतकर कैंसर को दूर रखा जा सकता है।

हमारे शरीर के विभिन्न अंगों की वृद्धि एवं टूट-फूट की मरम्मत कोशिका-विभाजन की प्रक्रिया से होती है। कोशिका-विभाजन की यह प्रक्रिया नियन्त्रित गति से सम्पन्न होती है। जब किसी कारणवश शरीर के किसी भी भाग में यह प्रक्रिया अनियन्त्रित हो जाती है तो वहाँ बड़ी तेजी से असामान्य कोशिकाएं बनने लगती हैं। इन असामान्य कोशिकाओं को कैंसर कोशिकाएँ कहते हैं। इनके जमाव एवं प्रसार से कैंसर की रसौली बनती है।

कैंसर पर पिछले पचास वर्षों में जितना भी शोधकार्य हुआ है, उसे मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इसका पहला भाग हमारे पर्यावरण में मौजूद उन पदार्थों या कारणों की खोज से सम्बन्धित है जो हमारे शरीर में कैंसर को जन्म देते हैं और दूसरा भाग उन पदार्थों या कारणों की खोज से जुड़ा हुआ है जो शरीर में कैंसर को तेजी से बढ़ाते हैं।

कैंसर की दो प्रमुख अवस्थाएँ होती हैं। किन्तु इनका एक दूसरे से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। पहली अवस्था वह है जिसमें कैंसर की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और दूसरी अवस्था वह है जिसमें कैंसर बढ़ता है। जहाँ तक शरीर में कैंसर के बीजारोपण का प्रश्न है, यह कैंसर पैदा करने वाले घटक तथा अंग विशेष आनुवंशिक पदार्थ के बीच एक ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया से होती है, जिसे उलटाया नहीं जा सकता। इस क्रिया के कारण कुछ कोशिकाएँ असामान्य अवस्था में बदल जाती हैं किन्तु नैदानिक दृष्टि से देखने योग्य ट्यूमर तब तक नहीं बनता जब तक दूसरे चरण के कारण जिन्हें संवर्धक कहा जाता है, अपना कार्य शुरू नहीं कर देते। वास्तव में संवर्धक ही असामान्य कोशिकाओं की संख्या बढ़ाकर अर्बुद (ट्यूमर) बनाते हैं जबकि ये स्वयं कर्कटजनक नहीं होते। इनका जैविक प्रभाव इनकी उपस्थिति

सम्पर्क सूत्र : डी-720, सरस्वती विहार, दिल्ली-110034

निर्भर करता है। यदि किसी तरीके से इन्हें हटा दिया जाये तो इनके द्वारा पहले डाला गया कुप्रभाव घटने लगता है।

यदि कैंसर का बीजारोपण करने वाले सभी घटकों की पूर्ण स्पष्ट पहचान हो जाये तो उन्हें नष्ट करके अथवा उनसे बच कर कैंसर के मामलों में कमी लाई जा सकती है। दुर्भाग्यवश ऐसे सभी कर्कटजनक कारकों को पहचान पाना और उनसे अपने पर्यावरण को मुक्त रखना सम्भव नहीं है। वैसे भी ये अत्यधिक अल्प मात्रा में मौजूद रहने के बावजूद प्राणी के विनाश के बीज बोने की सामर्थ्य रखते हैं। कैंसर से बचाव का सबसे अच्छा उपाय फिलहाल यही है कि उन पर्यावरणीय घटकों का पता लगाया जाये जो शरीर में पहुँचकर कैंसर को बढ़ा करके अर्बुद बनाते हैं और फिर शरीर को इन घटकों के सम्पर्क में आने से बचाया जाये।

कैंसर पर अब तक किए गए अनुसन्धान कार्यों द्वारा जहाँ एक ओर आहार के कुछ ऐसे घटकों के विषय में जानकारी मिली है जो शरीर में पहुँचकर कैंसर को पोषित करते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे आहारीय घटकों का भी पता चला है जो कैंसररोधी कहे जा सकते हैं।

ऐसे आहारीय घटक यदि खाये जाने वाले भोजन में पर्याप्त मात्रा में मौजूद हों तो वे शरीर में बन चुकी असामान्य कोशिकाओं की वृद्धि पर निरोधी प्रभाव डालेंगे। वैज्ञानिकों का विचार है कि आहार में कैंसर संवर्धक की भूमिका निभाने वाले पदार्थों को कम करके तथा कैंसररोधी पदार्थों की मात्रा बढ़ाकर कैंसर से होने वाली मौतों को काफी हद तक सीमित किया जा सकता है।

वसा एवं परिष्कृत कार्बोहाइड्रेट आहार के वे प्रमुख घटक हैं जो कुछ हद तक कैंसर संवर्धकों के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। कैंसररोधी आहारीय घटकों में विटामिन ए सी एवं ई, सेलीनियम, आहार में मौजूद रेशे तथा बन्दगोभी एवं फूलगोभी जैसी सब्जियों में पाये जाने कुछ यौगिक प्रमुख रूप से वैज्ञानिकों की 'आशा के केन्द्र' बने हुए हैं। इसके अलावा सेम वर्गीय फलियों एवं कुछ दूसरे पौधों के बीजों में भी कुछ ऐसे पदार्थ मिले हैं जो कैंसर को बढ़ने या फैलने से रोकते हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि ये पदार्थ सम्भवतया उन एंजाइमों के प्रभाव पर संदमी प्रभाव डालते हैं जो अर्बुद बनने में सहायता देते हैं।

दरअसल, विभिन्न देशों में कैंसर से होने वाली मृत्यु दरों के तुलनात्मक अध्ययन से वैज्ञानिकों को कैंसर के कारणों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिली हैं। जापान एवं अमेरिका में कैंसर के विभिन्न मामलों के तुलनात्मक अध्ययन से सर्वाधिक जानकारियाँ मिली हैं। ये दोनों देश तुलनात्मक अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त भी हैं, दोनों ही देश औद्योगिक दृष्टि से समान स्तर पर है और दोनों में शिक्षा एवं चिकित्सा का स्तर ऊंचा है। इतना ही नहीं, दोनों देशों में कैंसर की औसत दर भी लगभग समान है।

बहरहाल, जब इन देशों के निवासियों को होने वाले कैंसरों का गहराई से विश्लेषण किया गया तो पता चला कि अमरीकियों को अधिकतर स्तन, वृहदन्त्र (कोलन) तथा पुरस्थ ग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लैंड) का कैंसर होता है जबकि जापानियों में इन अंगों के कैंसर दुर्लभता से दिखाई पड़ते हैं। इसके विपरीत जापान में आमाशय का कैंसर काफी होता है जबकि अमेरिका में यह कैंसर बहुत ही कम होता है। जब वैज्ञानिकों ने अमेरिका में जा बसे जापानी मूल के दूसरी पीढ़ी के निवासियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी आँकड़ों का अध्ययन किया तो पता चला उनमें और अमरीकियों में कैंसर के मामलों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया कि अमेरिका एवं जापान के निवासियों के बीच कैंसर की विभिन्न किस्मों में पाई जाने वाली भिन्नता पैतृक न होकर पर्यावरणीय है।

उपरोक्त अध्ययन से सम्बद्ध वैज्ञानिकों का कहना है कि कैंसर के मामलों में देखी इस भिन्नता का सम्बन्ध आहार से है। विश्व के 39 देशों के बिवासियों के आहार सम्बन्धी आँकड़ों एवं उन देशों में कैंसर से होने वाली मृत्यु सम्बन्धी आँकड़ों के अध्ययन से पता चला है कि वसा समृद्ध आहार का कैंसर से घनिष्ठ रिश्ता है। अधिक वसा युक्त आहार खाने वाले देशों में कैंसर मृत्यु दर भी अधिक पाई गई।

अब तक किए गए शोधकार्यों से यही संकेत मिलता है कि औद्योगीकरण एवं आर्थिक समृद्धि के कारण जब कई देशों के निवासी अपने आहार में पहले की अपेक्षा अधिक वसा एवं परिष्कृत शर्करा वर्गीय पदार्थों को खाने लगते हैं तो इन देशों में कैंसर के रोगियों की संख्या भी बढ़ने लगती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में कैंसर मृत्युदर इसीलिए कम है कि यहाँ के निवासी आहार में बड़ी मात्रा में अनाज, दालें, गुड़ और शक्कर जैसे अपरिष्कृत शर्करा-वर्गीय पदार्थ खाते हैं।

पिछले साठ वर्षों में किए गए अध्ययनों से इस बात के स्पष्ट संकेत मिले हैं कि कर्कटजनक रसायनों, एक्स-किरणों एवं विषाणुओं के कारण जन्मे कैंसर को वसा समृद्ध आहार संवर्धित करता है। जानवरों पर किए गए अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि आहारीय वसा की मात्रा एवं उसकी किस्मों पर स्तन, बड़ी आँत एवं अग्न्याशय के कैंसर का विकास आश्रित है। इन अध्ययनों से यह भी पता चला है कि आहार में मौजूद सभी वसीय अम्ल (फैटी एसिड) कैंसर को संवर्धित नहीं करते। कुछ वसीय अम्लों को कैंसर-संवर्धक पाया गया है तो कुछ को नहीं, उदाहरणार्थ, लिनोलिइक अम्ल समृद्ध आहार कैंसर संवर्धक का कार्य करता है जबकि ओलिइक अम्ल एवं मछलियों तथा स्तनपाई प्राणियों से प्राप्त तेल समृद्ध आहार कैंसर को कतई संवर्धित नहीं करते।

जहाँ तक कैंसररोधी आहारीय घटकों का प्रश्न है, वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला हैं कि आहार में रेशेदार खाद्य पदार्थों की उपस्थिति काफी लाभदायक है। रेशेदार खाद्य पदार्थों का सेवन बड़ी आंत के कैंसर से बचाव करता है। जो लोग रेशेदार आहार खाते हैं, उन्हें पाचन पथ की कई बीमारियां एवं बड़ी आंत का कैंसर होने की सम्भावना काफी कम रहती है। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि आहार में मौजूद 'पेंटोसन' श्रेणी के रेशे ही बड़ी आंत के कैंसर से बचाने में सहायक होते हैं।

जानवरों पर किए गए अनुसंधानों से वैज्ञानिकों को पता चला है कि विटामिन 'ए' कैंसररोधी है और यह श्वसन पथ, स्तन एवं मूत्राशय में कैंसर को विकसित होने से रोकती है। बिटामिन 'सी' एवं विटामिन 'ई' आमाशय के कैंसर को बढ़ने से रोकते हैं। सेलीनियम नामक विरल तत्व को भी वैज्ञानिकों ने कैंसररोधी बताया है।

बहरहाल, चूंकि कैंसररोधी पदार्थों पर अनुसन्धान अभी कुछ वर्ष पहले ही शुरू हुआ है, अत: अभी ऐसे पदार्थों के विषय में अन्तिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अभी तक वैज्ञानिक किसी भी ऐसे पदार्थ की खोज नहीं कर पाए हैं जो पूर्णरूप से कैंसर के फैलाव को रोकने में सक्षम हो और जिसे ग्रहण करने से शरीर पर कोई इतरप्रभाव न पड़ते हों। सम्भवतया निकट भविष्य में वैज्ञानिक ऐसे पदार्थों को खोजने में सफल हो सकेंगे जो समूची मानव जाति को कैंसर से मुक्ति दिलाने में सहायक साबित होंगे, फिलहाल तो यही कहा जा सकता है कि अपने आहार में वसा एवं परिष्कृत शर्करा वर्गीय पदार्थों को सीमित करके हम कैंसर की चुनौती का लम्बे समय तक मुकाबला कर सकते हैं।

●●

(सम्प्रेषण)

कीड़ों का जैव-नियंत्रण

डॉ० अरुण आर्य

कीड़े-मकोड़े हमारी फसलों एवं वनों के वृक्षों को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। कुछ मित्र कीट भी हैं जैसे मधुमक्खी, सिल्क तथा लाख के कीड़े, परन्तु बहुतायत उन शत्रु कीड़ों की है जो हमारी फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं जैसे—बीटल, एफिड पतिंगा, झींगुर, काटने व छेदने वाले कीट आदि-आदि। कीड़ों के प्राकृतिक शत्रु हैं दूसरे बड़े कीड़े, सरी सृप (Reptiles) वर्ग के जीव, पक्षी (Birds), जीवाणु (Bacteria), विषाणु (Viruses) और फफूंद या कवक (Fungi)। कीड़ों की वृद्धि को नियन्त्रित करने में कीटनाशकों का महत्वपूर्ण योगदान है, परन्तु बढ़ते हुए पर्यावरण विषाक्तता ने हमें अन्य उपाय खोजने को विवश किया है।

डी० डी० टी०, गेमेक्सीन (B. H. C.), मेलाथियान, एल्ड्रिन, फ्लिट, टिक-20, बेगान स्प्रे आदि अनेक नाम हैं, जिनमें से एक या फिर कई नामों से आप परिचित होंगे, लेकिन जैव-नियन्त्रण क्या है, आप आश्चर्य कर रहे होंगे।

जैविक नियन्त्रण का विचार कोई नया नहीं है। चीनी लोगों ने नींबू पर लगने वाले कीड़ों को रोकने में चींटियों (*Ochophylla smaragdina*) का प्रयोग किया। अरब में खजूर का उत्पादन करने वालों ने पास के पहाड़ों से ओयेसिस में पीछा करने वाली चींटियों (Predator ants) को इकट्ठा किया, जिन्होंने पादपभक्षी (Phytophagous) चींटिओं का अन्त किया। 1762 में 'मैना' चिड़िया भारत से मारीशस गई, जहाँ उसने लाल पतिंगों को को नियन्त्रित किया। यह इस प्रकार का सर्वप्रथम उदाहरण है जब एक प्राकृतिक शत्रु एक देश से दूसरे देश गया।

हाल ही में जब संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि वैज्ञानिकों का एक दल चीन की यात्रा पर गया तो वह अपने साथ एक अनोखा उपहार ले गया। यह अनोखा उपहार था कुछ बर्रे या ततैया (Wasp) का समूह और वापसी में यही दल अपने साथ लाया—'हरे लेस विंग्स' परभक्षी कुटकी तथा परजीवी बर्रे (देखिए **विज्ञान** अंक 9 दिसम्बर 1990)।

कीटों के परजीवी कवक

कीटों का सफल नियन्त्रण कवकों (फफूंद) द्वारा सम्भव है। **डे गियर** (1776) पहला वैज्ञानिक था जिसने एक ऐसे कवक (Fungus) का वर्णन किया जो मक्खी (*Musca domestica*) पर आक्रमण करता था। **कॉन** ने बाद में (1855) इसे 'एम्पूसा मस्की' (*Ampusa muscae*) कहा।

मक्खी कवक (*Entomophthora muscae*) घरेलू मक्खी पर पाया जाने वाला एक परजीवी है। यह मक्खियों का कालरा उत्पन्न करता है। कभी-कभी आपने अपनी खिड़की के शीशे पर मरी मक्खी देखी होगी, इस मृत

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग, म० स० राव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा-390002 (गुजरात)

मक्खी को ध्यान से देखने पर इसके शरीर के चारों ओर कवक श्वेत वलयों के रूप में दिखयाई देती है। इन वलयों में अलैंगिक जनन द्वारा उत्पन्न कणिकीय संरचनायें या कोनीडिया होते हैं, जो कीट के शरीर पर उत्पन्न होते हैं।

अपने देश में **एम० जे० नरसिम्हन** (1970), **सुन्दराबाबू** एवं **जयराज** (1985) तथा **अग्रवाल एवं उनके सहयोगियों** (1990) ने कीट भक्षी कवकों पर विशेष कार्य किया है।

कृषि वि० वि० (प० बंगाल) के तीन वैज्ञानिकों **डॉ० राय**, डॉ० **मुकर्जी** एवं डॉ० **मुखोपाध्याय** (1990) ने अपनी खोजों में पाया कि संतरे के पेड़ पर अनेक कीड़ों के साथ पस्पल स्केल कीड़ा लगता है। प्राकृतिक रूप से इस कीडे का नियन्त्रण **एस्करसोनिया** (*Askersonia*) नामक कवक द्वारा होता है। यह कवक पत्ती तथा तने पर कीड़े के शरीर के चारों ओर ऊँची दीवार-सी बना देता। **डॉ० नरसिम्हन** ने एक नये कवक **डेरेक्सिया लेकानी** (*Dereksia lcanae*) द्वारा मैसूर में काफी के पौधों को नुकसान पहुँचाने वाले हरे कीड़े को नियन्त्रित करने में सफलता ायी है।

रानी दुर्गावती वि० वि० जबलपुर (म० प्र०) के जीव विज्ञान विभाग के **डॉ० जी० पी० अग्रवाल** के नेतृत्व ‑ इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। तीन कवक **एस्परजिलस फ्यूमीगेटस** (*Aspergillus fumigatus*), **बेयूवेरिया बैसियाना** (*Beauveria bassiana*) और **फ्यूजेरिया स्पीशीज** (*Fusarium sp.*) मध्यप्रदेश के जंगलों में सागौन की पत्ती गिराने वाले (Defobater) कीड़े (Lepidoptera) हिबलिया प्यूरा (*Hyblea puera*) पर आक्रमण करते पाये गये। **बे० बैसियाना** अन्य कीड़ों पर भी पाया गया, जैसे—चींटी, मकड़ी और बीटल जो दूसरे पौधों पर आक्रमण करते हैं। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि **नोमूरिया** नामक कवक हाइपो काला कीड़े को नियन्त्रित कर सकता है, जो **डाइयोस्पाइरस मेलैनोजाइलॉन** (*Diospyrus melanoxylon*) नामक पौधे की पत्तियों को खाता है। इस पौधों की पत्तियों का उपयोग बीड़ी बनाने में करते हैं।

ब्राजील में **मेटारीजियम** (*Metarhizium anisopliae*) द्वारा स्पिटल बग (*Mahanarva posticata*) को मारकर गन्ने (*Saccharum officinarum*) की फसल को बचाया गया। चीन में एन्टोमॉफथोरा एफिडिस (*Entomophthora aphidis*) द्वारा कपास पर लगने वाले कीड़े (*Aphis gossypii*) को नियन्त्रित किया गया।

कुछ पीछा करने वाले (Predacious fungus) कवक भी हैं जो सूच्य कृमियों (Nematodes) को पकड़ लेते हैं, उन्हें मार डालते हैं और उनको पचा जाते हैं। कुछ जातियाँ जैसे **आर्थोबोट्रिस** (*Arthobotrys*) और **डैक्टीलेला** (*Dactylella*) चिपकने वाली शाखायें और लूप्स बनाते हैं। दूसरा कवक **डैक्टाइलैरिया** (*Dactylaria*) अँगूठी के समान गोल कोशिकायें बनाता है जिनमें **0.1** से **1** मि० मी० लम्बाई वाले सूच्य कृमि पकड़ लिये जाते हैं और कवक द्वारा उत्पन्न पाचक द्रव उन्हें पचा जाते हैं।

जीवाणु एवं विषाणु द्वारा जैव-नियंत्रण

बेसिलस की एक जाति (*Bacillus thuringiencis*) एक नहीं अनेक कीड़ों (*Lepidopterian*) को मारने में प्रयुक्त की गई है। दीदरलैंड में यह पाया गया कि पादप वृद्धि करने वाले जीवाणु (*Rhizobacteria*) **स्यूडोमोनॉस**

स्पीशीज (*Pseudomonas sp,*) ने आलू में सायनाइड उत्पन्न करने वाले (DRMO Deleterious rhizosphere microorganisms) जीवाणुओं का अन्त किया (**बेकर एवं स्किपर्स**, 1987)।

एन० पी० वी० विषाणु (Nuclear polyhedrosis viruses) और जी० आई० वी० विषाणु (Granulosis inclusion viruses) जिन्हें अब **बेकूलो वायरस** (Baculovirus) कहते हैं, कीटों को मारने में पूरी तरह से सक्षम हैं। लगभग 650 कीड़ों के विषाणु खोजे गये हैं, जिनमें लगभग एक दर्जन सफलतापूर्वक जैव-नियन्त्रण में प्रयुक्त हो रहे हैं।

जैविक कीटनाशी

कुछ विकसित देशों जैसे रूस, अमेरिका, ब्रिटेन में अब रसायनिक कीटनाशकों के स्थान पर जैविक कीटनाशी प्रयोग किये जा रहे हैं। बोवेरिन माइकर, वरटालैक आदि कुछ ऐसे जैव कीटनाशी हैं जिन्हें क्रमशः **बेवेरिया बेसियाना हिरसूटेला थाम्पसोनाई** और **वर्टीसीलिया लेकनाई** से प्राप्त कर सकते हैं।

रसायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से कुछ समय में ही कीट-प्रतिरोधक-क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। फिर हमें दूसरा कीटनाशी खोजना पड़ता है जो कि एक मँहगा काम है। जैव कीटनाशी इस कसौटी पर कितने खरे उतरते हैं, यह शोध का विषय है।

एन्डरसन एवं राबर्ट्स (1983) ने पाया कि यदि कीटों पर कवक के छिड़कने से पहले न्यून मात्रा में किसी कीटनाशी का प्रयोग किया जाय तो उनकी प्रतिरोधक क्षमता में कमी हो जाती है, जिससे वे शीघ्रता से कवकों के ग्रास बन जाते हैं। आजकल समेकित जैव नियन्त्रण विधियों (Integrated pest management) में कवक के साथ वृद्धि कारक रसायनों एवं न्यून मात्रा में रसायनिक कीटनाशी का प्रयोग किया जाता है।

आज हमारे देश में इस प्रकार के शोध की विशेष आवश्यकता है। इससे जहाँ एक ओर हम कीड़ों से पौधों को सुरक्षित रख कर खाद्य पदार्थों की उपज बढ़ा सकेंगे, वहीं दूसरी और मच्छरों जैसे कीटों पर विजय पा सकेंगे। और तो और जैव रसायनों के प्रयोग से आयात किये जाने वाले कीमती रसायनों की खपत में भी कमी होगी।

●●

(पृष्ठ 32 का शेष)

फूलों पर जाने वाले चमगादड़ फूलों के रंग नहीं वरन् गंध के उन्हें पहचानते हैं। ऐसे फूलों में मकरंद और पराग अत्यधिक मात्रा से उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए एक बालसा ट्री फ्लावर (Balsa Tree Flower) में 10 ग्राम मकरंद होता है और **बाओबाब** (Baobab) या 'कल्पवृक्ष' (*Adinsonia digitata*) के एक फूल में 2000 (पराग बनाने वाले) नरजननांग होते हैं। मकरंद शर्करा और पराग कण प्रोटीन बहुल होते हैं।

किन्तु विचित्रताओं से भरी इस प्रकृति में कुछ ऐसे भी कीट हैं जो सुगंध नहीं बल्कि दुर्गन्ध की ओर आकृष्ट होते हैं। कुक्कूपिंट (Cuckoo pint-*Arum maculatum*) के फूलों पर छोटी मक्खियों की एक जाति बदबू के कारण मंडराती है। इसी प्रकार कैक्टस की जाति के एक पौधे **स्टैपीलिया** (*Stapelia*) और संसार के विशालतम फूल, **रैफ्लेसिया** (*Rafflesia*) के फूल की ओर छोटी जिह्वा वाली मक्खियाँ सड़े मांस की दुर्गन्ध के कारण भिनभिनाती हैं।

इसी के साथ अगले अंक तक के लिए विदा।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पक्षी संरक्षण एवं जैव विविधता परियोजना

सतीश कुमार शर्मा

प्रकृति में पक्षियों सहित अनेक वन्य प्राणियों का विनाश चिरकाल से होता चला आ रहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही प्राणी विनाश महाविनाश का रूप ले बैठा। मोटे तौर पर यह माना जाता है कि वर्ष 1600 से पूर्व प्रति 1000 वर्ष में एक प्रजाति विलुप्त होती थी जबकि सन् 1600 से 1950 के बीच प्राणी विलुप्तीकरण की दर एक प्रजाति प्रति 10 वर्ष तक जा पहुँची। सन् 1950 के बाद यही दर तेजी से बढ़ कर एक प्रजाति प्रतिवर्ष हो गई।

अन्य प्राणियों की भाँति पक्षियों के विलुप्तीकरण में चिन्तनीय वृद्धि हुई है। पक्षी वैज्ञानिक सन् 1600 को आधार मानकर इससे पूर्व विलुप्त हुए पक्षियों को प्रागैतिहासिक काल (Pre-historic) में विलुप्त हुए पक्षी मानते हैं। इद पक्षियों की अधिकांश जानकारी इनके जीवाश्मों पर आधारित है। हालाँकि इस काल में विलुप्त हुए पक्षियों से सम्बन्धित अनेक पहलू आज ज्ञात हो चुके हैं, परन्तु इन पक्षियों के रंगों के बारे में बहुत कम ज्ञान हो पाया है।

सन् 1600 के बाद विलुप्त हुए पक्षियों का काफी ज्ञान पक्षीविदों को है। कुछ पक्षी तो हाल ही में विलुप्त हुए हैं। सन् 1600 के बाद पक्षियों की 78 पूर्ण प्रजातियाँ (Full species) तथा 49 उपजातियाँ (Sub-species or Races) भू-मण्डल से विलुप्त हो चुकी हैं। विलुप्त हुई 78 पूर्ण प्रजातियों के कारण हमने 26 वंशों (Genena) तथा 2 कुलों (Families) को तो पूरी तरह खो दिया है। आज ऐनोमैलोप्टैरिगिडी तथा रैफिडी का कोई जीवित सदस्य आने वाली पीढ़ियों को दिखाने के लिए शेष नहीं है।

सन् 1600 के बाद विभिन्न प्राणी भौगोलिक-मण्डलों में पक्षियों का विलुप्तीकरण दर निम्नवत् रहा—

प्राणी भौगोलिक मण्डल	विलुप्त		विलुप्त किस्मों का प्रतिशत
	प्रजातियाँ	उपजातियाँ	
1. होलार्कटिक (नियोआर्कटिक तथा पैलीआर्कटिक)	10	3	10
2. इथियोपियन	17	2	15
3. ओरियन्टल	3	—	2.5
4. ऑस्ट्रेलियन	38	28	52
5. नियोट्रॉपिकल	10	16	20.5
योग	78	49	

[1]अरबोरीकल्चरिस्ट, विश्व वानिकी वृक्ष उद्यान, झालाना डूंगरी, जयपुर-302004 (राजस्थान)

पक्षियों का वर्षवार विलुप्तीकरण निम्नवत् रहा—

अवधि	विलुप्त पक्षी		विलुप्त किस्मों का प्रतिशत
	प्रजातियाँ	उपजातियाँ	
1680-1700	1	—	1
1701-1750	9	—	7
1751-1800	10	3	10
1801-1850	12	7	15
1851-1900	27	19	36
1901-1950	19	19	30
1950 के बाद*	0	1	1
योग	78	49	

* 1964 तक के आँकड़ों पर आधारित

हमारा देश तथा एशिया के काफी क्षेत्र जैसे पाकिस्तान, वाग्लादेश, वर्मा, नेपाल, लंका, मलाया प्रायद्वीप सुमात्रा, बोर्नियो, जावा, फिलिपीन्स, चीन की नानलिग पर्वत-श्रेणी के दक्षिण वाला भाग, इन्डोनेशिया फॉरमोसा आदि ओरियन्टल प्राणी भौगोलिक क्षेत्र में आते हैं। कहने को तो आस्ट्रेलियन प्राणी भौगोलिक क्षेत्र में उच्चतम् विलुप्तीकरण हुआ है लेकिन चालू शताब्दी में तेजी से बढ़ी जनसंख्या व अनेक अन्य कारणों से ओरियन्टल क्षेत्र में भारी वन-विनाश हुआ है, जिससे न केवल पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी हैं, बल्कि आवासविहीनता के कारण अनेक पक्षी प्रजातियाँ विलुप्तीकरण की ओर अग्रसर हो चुकी हैं। ओरियन्टल क्षेत्र अपनी वानस्पतिक एवं प्राणिक विविधता का कोई सानी नहीं रखता। इस क्षेत्र की विविधताओं को भावी पीढ़ियों के लिए मूल रूप में बचाये रखने के लिए "जैव विविधता परियोजना" (Biodiversity Project) की शुरुआत की गई। यह परियोजना आई० सी० बी० पी० (International Council for Bird Peeservation) द्वारा चलाई जा रही है, जिसका मुख्यालय कैम्ब्रिज (इंग्लैण्ड) में है।

पक्षीविदों का मानना है कि यदि पक्षी आवासों को मूल रूप में सूक्ष्म स्तर तक सुरक्षित रख लिया जाये तो पक्षियों को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है। आई० सी० बी० पी० ने विभिन्न देशों के विभिन्न क्षेत्रों (पक्षी आवासों) का तथा उनमें दुर्लभ हो चले पक्षियों का सर्वेक्षण करवाया है। ओरियन्टल क्षेत्र में दुर्लभ हो चले पक्षियों का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

क्रम संख्या	क्षेत्र	कुल सूचीबद्ध दुर्लभ पक्षियों की प्रजातियाँ	कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण
1.	उत्तर-पूर्वभारत, चीन तथा उत्तरी इण्डोनेशिया	110	चाइनीज ट्रैगोपान, मोनल, पीकॉक फीजेन्ट, वुड स्नाइप, स्केली लाफिंग थ्रश, फिन्स बया आदि-आदि ।
2.	उत्तर-पश्चिमी भारत	14	पहाड़ी बटेर, वेस्टर्न ट्रैगोपान, चीर फीजेन्ट, जर्डन बेबलर आदि-आदि ।
3.	प्रायद्वीपीय भारत	22	नीलगिरी वुड पीजन, फोरेस्ट स्पॉटेड ऑवलेट, नीलगिरी फ्लाई कैचर आदि-आदि ।
4.	श्रीलंका	24	श्रीलंका स्पर फाउल, श्रीलंका वुड पीजन, श्रीलंका लॉरीकीट, श्रीलंका हिल मैना, श्रीलंका मैगपी आदि-आदि ।
5.	दक्षिण पूर्व एशिया	36	इंपीरियल फीजेन्ट, वीयतनाम फीजेन्ट, सूटी बैबलर, हुडेड ट्री पाई, वीयतनाम, ग्रीन, फिंच आदि-आदि ।
6.	ताइवान	16	ताइवान पारट्रिज, ताइवान फायर क्रस्ट, ताइवान पुहीना आदि-आदि ।
7.	इण्डोनेशिया तथा फिलीपीन्स		अधिकांश प्रजातियाँ एण्डेमिक है अतः सुरक्षा योग्य है ।

पक्षियों का संरक्षण मनुष्य के अस्तित्व से जुड़ा हुआ मसला है। पक्षी प्रकीर्णन, परागण, कीट-नियन्त्रण, जैसी प्राकृतिक क्रियाओं को वृहत स्तर पर सम्पादित कर कृषि बागवानी तथा वानिकी फसलें मनुष्य को उपलब्ध कराते हैं। पृथ्वी के प्रत्येक निवासी का कर्तव्य है कि पक्षी संरक्षण हेतु जैव विविधता परियोजना को न केवल ओरियन्टल क्षेत्र में, बल्कि समस्त भूमण्डल पर सफल होने में अपना सकारात्मक योगदान प्रदान करे ताकि पक्षियों का विलुप्तीकरण रोका जा सके और साथ ही उनसे प्राप्त होने वाली प्राकृतिक सेवायें निर्बाध रूप से आने वाली पीढ़ियों को भी उपलब्ध हो सकें और मानव, भविष्य में भी, पक्षियों द्वारा दिये जाने वाले लाभों को प्राप्त कर सके।

● ●

मानसिक और शारीरिक विकलांगों का पशुओं द्वारा इलाज

उदय ठाकुर

जबकि कई लोगों को मानसिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के साथ सम्पर्क साधने में कठिनाई होती है और समझदारी की कमी के कारण वे अक्सर उनसे दूर भी हो जाते हैं लेकिन पशु-पक्षी, मछलियाँ विकलांगों का श्रेष्ठ इलाज और उनकी मित्र मानी जाती है।

मानसिकता और शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों को कक्षा की बजाय घरेलू पशु-पक्षियों के साथ समय व्यतीत करने दिया जाए तो वे अपने शब्द ज्ञान में दो से दस गुना तेजी से वृद्धि कर सकते हैं। पशु-पक्षियों के साथ रहने से वे अधिक देर तक ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं तथा अधिक बोलने की ओर उत्सुक हो सकते हैं। इससे ऐसे बच्चों की आत्म प्रेरणा बढ़ सकती है और याददाश्त भी तेज हो सकती है। शारीरिक रूप से विकलांग बुजुर्ग व्यक्ति अक्सर महसूस करते हैं कि पालतू जानवर बोरियत, एकाकीपन और निराशा कम करने में उनकी सहायता करते हैं। किसी जानवर से बात करके उसे छूकर या किसी एक्वेरियम में सुनहरी मछली को तैरते देखकर कई लोग शान्ति अनुभव करते हैं। इसी प्रकार शक्ति अनुभव चिड़ियाघरों में जानवरों का क्रियाकलाप देखकर भी होता है। जहाँ लोग ऐसे विकलांगों को एक वस्तु समझते हैं, जानवर उसे एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं।

कुत्ते, बिल्ली, गाय और यहाँ तक कि डॉल्फिन मछली अत्यन्त जिज्ञासु, निर्णय लेने वाले और स्वाभाविक जीव हैं और यही गुण वे मानव, विशेषकर बच्चों में जागृत करती दिखाई देती हैं। इससे विकलांगों में आत्म प्रेरणा जागृत होती है। प्राचीन काल के लोग कई जानवरों को सहायक और बुद्धिमान जीव मानते थे। चाहे यह बात मानव की कल्पना ही हो लेकिन यह सच्चाई है कि इन जानवरों का सामना होने पर मानव को ज्ञान की उपस्थिति का अनुभव होता है, मानव मन को उद्वेलित करने के लिए काफी है। आदमी कुत्ते के साथ दौड़ते हुए या घुड़सवारी करते हुए हल्का व तनावरहित महसूस करता है। इस प्रकार यह पल मनुष्य की उन योग्यताओं को पुनः सक्रिय करता है, जो अत्यन्त सीमित या अस्तित्वहीन हो गई होती हैं।

ऐसे आमंत्रित करने वाले माहौल में तनाव हल्का पड़ जाता है तथा मन और शरीर अनुभव, विशेषकर सीखने के अनुभव, के लिए अधिक तैयार हो जाते हैं। इस उत्तेजना के फलस्वरूप कुल मिला कर सकारात्मक भावना उत्पन्न होती है। कुत्ते, बिल्ली, गाय के लिए स्पर्श बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। जब एक बार वे किसी विकलांग व्यक्ति की विशेष आवश्यकताओं को समझ लेते हैं और उससे एक व्यक्तिगत नाता जोड़ लेते हैं तब वे उस व्यक्ति विशेष के शरीर से नाक रगड़ते हैं, प्यार से दुलारते हैं और स्वयं को भी दुलारने देते हैं। विदेशों में तो समुद्री प्राणी और मानव सम्पर्क को बहरे व दृष्टिहीन रोगियों तथा उन लोगों के इलाज में उपयोग किया जा रहा है जिनकी रीढ़ की हड्डी को चोट पहुँची हो या कैंसर हो।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के मामले में विज्ञान ने मन और शरीर के सम्बन्धों के महत्व को बताया है। 'पराशिक्षा' ने शैक्षणिक प्रक्रिया में आरामपूर्वक, धीमे-धीमे लयबद्ध सांस लेने का मूल्य प्रदर्शित किया है। ध्यान लगाने के अभ्यास से पता चलता है कि जब तनाव कम हो जाए तो मानव की क्षमता में वृद्धि होती है। इन प्राणियों और मानव के मेल में उपर्युक्त सभी तत्वों का मिश्रण होता है तथा मनुष्य को प्रभावशाली मित्र प्राप्त होते हैं।

●●

प्राधानाचार्य, रोटरी स्कूल फॉर डेफ, रामबाग रोड, अम्बाला छावनी, हरियाणा

वृक्ष

इरा अग्रवाल

वृक्ष ! हमारा प्रणाम स्वीकार करो,
हम तुमसे फूल, फल, पत्ते लेते हैं,
तुम्हारी गंध के झोंके में सांस लेते हैं,
तरुवर ! हम श्रद्धानत हैं।
तुम्हारे चरणों में पृथ्वी है,
तुम्हारे अनुगत आकाश की छवि है,
तुम्हारी हरीतिमा में वायु का शोधन है,
तुम्हारी विराटता में अग्नि का नियन्त्रण है।
तुम्हारी क्लिष्ट जड़ें
हमें भूमि का नमन सिखाएँ,
तुम्हारा ऊर्ध्व विस्तार
आकाश का मनन जगाए,
तुम्हारी अमृत छाया
हमारे शीर्ष पर बनी रहे,
तुम्हारी दिव्य काया
देह और मन से जुड़ी रहे।
विटप ! हम तुम्हें सींचते हैं,
तुम्हारी कोपलों को पूजते हैं,
तुम्हारी ओट में दिया रखकर
प्रकाश को जीतते हैं,
तुम्हारे बीजों को वपते हैं
अपने स्वार्थ हेतु,
तुम्हारे शरणागत पाखियों की
चहचहाहट से
संगीत का आदिरूप उलीचते हैं।
वृक्ष ! हम सदैव तुम्हारे ऋणी हैं—
कि तुम यावज्जीवन हमारे
सहचर हो,
हमारी मृत्योपरान्त
सहचर हो,
वृक्ष ! हमारी तुम्हारी संधि ही
ब्रह्माण्ड की लय है।
तुम्हारा लोप विनाश की धुरी है,
तुम्हारा ध्वंस अकाल का प्रणी है,
हम तुम्हें कटने न देंगे,
हम तुमसे विलग सम्भव नहीं
हमारी मैत्री की सदैव जय।

●●

---

45 प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर-251002 (उत्तर प्रदेश)

एक समर्पित वनस्पति विज्ञानी : टॉमस टामसन

डॉ० रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

प्रकृति ने भारतवर्ष की धरती को रुचि से सँवारा है। इस देश की भौगोलिक स्थिति, जलवायु एवं वातावरण की विविधता के फलस्वरूप यह देश विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों से परिपूर्ण है। अनादिकाल से अनेक ऋषि-मुनि तथा वैज्ञानिक प्रकृति के इस अनमोल खजाने का अध्ययन एवं विविध रूप से उपयोग करते रहे हैं। आधुनिक-काल में इस दिशा में सराहनीय कार्य हुआ, **सर जोसफ डाल्टन हुकर** के नेतृत्व में, जिनके नाम से प्रत्यक वनस्पति-प्रेमी भारतीय परिचित है। परन्तु सर हुकर के इस महान कार्य में उनके अनेक सहकर्मियों का अविस्मरणीय योगदान है। इन्हीं सहकर्मियों में एक नाम है **टॉमस टॉमसन** का।

ग्लास्गो के एक प्रोफेसर के घर में 1817 में जन्मे 22 वर्षीय युवा टॉमस 1839 में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के एक अधिकारी के रूप में भारत आये। उनकी पहली नियुक्ति गंगा के ऊपरी मैदानी भाग पर कार्य हेतु हुई जिसके दौरान उन्होंने असंख्य पौधें एकत्रित किये परन्तु 1841 में उनकी अफगानिस्तान यात्रा के दौरान उनका सर्वस्व, यहाँ तक कि अब तक एकत्र किए सारे पौधे भी खो गए। इसके अगले वर्ष ही वे गजनी के लिए रवाना हो गए। 1845 से 1847 तक उनकी नियुक्ति सतलज प्रक्षेत्र में हुई। इन्हीं विकट परिस्थितियों में उन्होंने उत्तरी-भारत के मैदानी भागों के पादपों (फ्लोरा) का गहन अध्ययन किया तथा लगभग 1000 प्रजातियों को एकत्रित किया। उनके उत्साह को देखते हुए 1847 में उन्हें कश्मीर-तिब्बत सीमा के भूगोल तथा वनस्पतियों पर विस्तृत रपट तैयार करने हेतु नियुक्त कर दिया गया। इसी अन्तराल में दार्जिलिंग में सन् 1850 में उनका साथ सर हुकर के साथ हुआ।

टॉमसन महोदय प्रकृति प्रेमी होने के कारण सम्भवतः जीवन-पर्यन्त निरंतर पौधों की खोज में ही लगे रहते, किन्तु उनके असीम अनुभव एवं ज्ञान को देखते हुए सर हुकर ने उन्हें अपने साथ और भी उत्कृष्ट कार्य करने के लिए प्रेरित किया। वस्तुतः इन दोनों ही वैज्ञानिकों ने मिलकर भारत में पाये जाने वाले पौधों का विस्तृत विवरण (फ्लोरा) लिखना प्रारम्भ किया था, इस आशा से कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस कार्य को प्रोत्साहन देगी। परन्तु कम्पनी ने तो ध्यान भी नहीं दिया। इससे सर हुकर को तो कम पर टॉमसन को गहरा आघात पहुँचा। टॉमसन अत्यन्त निराश हुए पर सर हुकर जैसे वरिष्ठ वैज्ञानिकों एवं एलन ब्लैक जैसे हितैषियों ने उनका मनोबल गिरने नहीं दिया।

1851 से 1854 तक टॉमसन महोदय ने अर्जित अवकाश तथा अवैतनिक छुट्टी लेकर कीव में भारतीय वनस्पतियों के अध्ययन में जुटे रहे। बाद में उनकी रुचि, कार्यक्षमता एवं लगन को देखते हुए उन्हें रायल बोटैनिक गोर्डन (भारतीय वनस्पति उद्यान), कलकत्ता का सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त किया गया।

वैज्ञानिक एस-डी, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, गान्तोक-737101

इस समय जो प्रमुख कार्य उन्होंने किया वह यह कि उन्होंने सूखे पौधों के बण्डलों को एकत्रित कर उद्यान में ही एक 'हरबेरियम' (पादपालय) की स्थापना की। इसमें उनके अपने एकत्रित पौधों के नमूनों के अतिरिक्त अनेक मित्रों के सहयोग से वालिच द्वारा एकत्रित पौधे भी थे। इन सभी पौधों का उन्होंने ब्योरा तैयार किया था जो बंगाल एसियाटिक सोसायटी (25 : 405 : 1856) में प्रकाशित भी हुआ।

टॉमसन की विशेष रुचि उद्भिजों में थी। जब वे भारतीय पौधों की पहचान के लिए एक अत्यन्त ही प्रभावी प्रणाली विकसित कर ही रहे थे उसी बीच अवध की क्रान्ति प्रारम्भ हो गई। और तो और उनके उद्यान अधिकारी राबर्ट स्काट ने अपनी वर्मा-यात्रा को पूरे एक वर्ष तक के लिए लम्बा कर दिया फलस्वरूप देख-रेख के अभाव में उद्यान की दशा बिगड़ने लगी और उद्यान आलोचना के घेरे में आ गया। स्वाभाविक रूप से गड़बड़ी की जिम्मेदारी टॉमसन के ऊपर रख दी गई। वे अस्वस्थ भी रहने लगे और अन्ततोगत्वा उन्हें 1861 में भारत छोड़ना पड़ा।

वैसे टॉमसन महोदय को अपने कार्यकाल के प्रारम्भ एवं अन्त में अनेकानेक बाधाओं का सामना करना पड़ा, किन्तु बीच के तीन वर्ष उन्हीं के शब्दों में उनके जीवन के, भारत में उनके कार्यकाल का ''स्वर्णिम समय'' था।

टॉमसन के प्रमुख प्रकाशनों में सर हुकर के साथ 'प्रिकरसर्स एण्ड फ्लोरम इन्डिकम' था, जिसका अन्तिम खन्ड 1861 में प्रकाशित हुआ और इसी के साथ भारतीय पौधों पर टॉमसन के कार्य की इति श्री भी हो गई। परन्तु इतने अल्पकाल में उन्होंने भारत की वनस्पति सम्बन्धी जो भी कार्य किया वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसी कारण वनस्पतिविज्ञानी टॉमसन के चिर ऋणी रहेंगे।

●●

कार्सिनोजन : कैंसर उत्पादक अभिकर्मक

कु० अंजना असावा, डॉ० पी० बी० पंजाबी एवं डॉ० सुरेश आमेट ।

प्रकृति में ऐसे बहुत सारे रसायन विद्यमान हैं जो प्राणियों में कैंसर की बीमारी उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं। ऐसे पदार्थ कार्सिनोजन कहलाते हैं और कैंसर उत्पन्न होने की प्रक्रिया 'कार्सिनोजिनेसिस' कहलाती है।

ये पदार्थ किसी भी परिमाण में भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं द्वारा जीवित प्राणियों में दुर्दम्य वृद्धि या मैलिग्नेन्ट ग्रोथ के माध्यम से अर्बुद या ट्यूमर उत्पन्न कर सकते हैं। ये रसायन Au. Ag, Na, Cl आदि जैसे अक्रिय पदार्थ भी हो सकते हैं और कुछ विशेष स्थानीय क्रियाओं द्वारा कैंसर पैदा कर सकते हैं।

रसायन विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, विज्ञान महाविद्यालय, उदयपुर-313001 (राजस्थान)

इन रसायनों के अलावा कुछ भौतिक कारण भी हैं, जो कैंसर फैलाते हैं। इनमें मुख्य हैं पराबैंगनी एवं आयनीकृत विकिरण, जलना, कटना, गुणसूत्रों में अनियमितता और कुछ विषाणु या वायरस।

''कार्सिवोजिनेसिस का सिद्धान्त'' कुछ कठिन प्रयोगों पर आधारित है। निम्न दो बिन्दु कार्सिनोजिनेसिस को दर्शाते हैं—

(अ) कार्सिनोजन जैविक महत्व के अणु से सीधे ही क्रिया करते हैं, और

(ब) कार्सिनोजन के उपापचय (metabolism) से उत्पन्न उत्पाद (metabolites) कार्सिनोमा की उत्पत्ति के लिए सक्रिय होते हैं।

दुर्दम्य अर्बुद की शुरुआत करीब बीस पदों में होती है, लेकिन कैंसर की वृद्धि को कुछ क्रियाओं द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इन्हें प्रोमोटर कहते हैं, उदाहरण के लिए सिगरेट का धुआँ। लेकिन प्रोमोटर कैंसर नहीं फैलाते हैं। अर्बुद की वृद्धि सामान्य ऊतक की वृद्धि की तुलना में कम होती है। प्रारम्भ में मात्र कुछ अनियमितताएँ ही उत्पन्न होती हैं जैसे कफ का जमना, अस्थिमज्जा की कार्यक्षमता में कमी आदि और यही कारण है कि कैंसर की उपस्थिति प्रारम्भिक अवस्था में आसानी से ज्ञात नहीं हो पाती।

कैंसर की वृद्धि को शल्य-चिकित्सा, भैषजिकी तथा रेडियो-थरेपी द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। वैसे अन्तिम दोनों विधियाँ लिम्फोसाइट्स की संख्या को भी कम करती हैं।

कैंसररोधी औषधियाँ

प्रति कैंसर औषधियों को निम्न चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

(I) एन्टीमेटाबोलाइट्स के सूत्र उन रसायनों की तरह होते हैं, जो कि ट्यूमर की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। ट्यूमर गलती से अपनी नई कोशिकाओं का निर्माण दिए गए (administered) एन्टीमेटाबोलाइट्स से करता है और यह उसकी आगे की वृद्धि को रोकता है। सम्भवतः अमीनोप्टेरिन (Aminopterin) जो फोलिक एसिड का एन्टीमेटाबोलाइट तथा एथिओनीन (Ethionene) मैथिओनीन का एन्टीमेटाबोलाइट है, का युग्म ही सर्वाधिक प्रसिद्ध युग्म है।

(II) एन्जाइम भी कैंसर को ठीक करने के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए कुछ कैंसर कोशिकाएँ एस्पेराजिन (Asparagine) पर निर्भर होते हैं, लेकिन वे स्वयं एस्पेराजिन निर्मित नहीं कर सकते हैं। अतः ये एस्पेराजिन के लिए सामान्य कोशिकाओं पर निर्भर रहते हैं, जो कि रक्त-संचार द्वारा कैंसर कोशिकाओं तक पहुँचता है। एन्जाइम एस्पेराजिन रक्त द्वारा निर्मित एस्पेराजिन को हटा देता है। इससे दुर्दम्य या प्रभावित कोशिका को भोजन नहीं मिल पाता है और कैंसर की वृद्धि रुकने लगती है।

(III) अंतः स्राव हारमोन मुख्यतया स्तन, गर्भाशय; प्रोस्टेट आदि अंगों के ट्यूमर के उपचार में काम आते हैं, क्योंकि ये अंग हारमोन के नियन्त्रण में रहते हैं। ट्यूमर विपरीत हारमोनों से प्रभावित होते हैं। किन्तु मानव शरीर पर इसके विपरीत प्रभाव भी पड़ते हैं। यह पुरुषों में स्त्रीत्व तथा स्त्रियों में पुरुषत्व उत्पन्न कर देता है।

(IV) एल्किलीकारक अभिकर्मक नाइट्रोजन पर आधारित होते हैं जैसे कि ट्राइएथिलऐमीन तथा माइलार्न (mylearn)। ये रेडियोमिमिटिक (radiomimetic) अभिकर्मक कहलाते हैं, क्योंकि इनका जैविक प्रभाव विकिरण को प्रयोग करने से मिलता-जुलता है। यह विधि रक्त कैंसर या ल्युकीमिया के उपचार में उपयोगी है।

रसायनिक भैषजें (drugs) प्राणियों के स्वास्थ्य एवं जल्दी वृद्धि करने वाले भाग पर अधिक प्रभाव डालती हैं, जबकि इनका असर धीमी वृद्धि करने वाले ट्यूमर पर कम होता है।

धातु कार्सिनोजन

कई धातु जीवित प्राणियों में कैंसर फैलाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। ऐसे कुछ प्रमुख धातु निम्नलिखित हैं—Al, Co, Cr, Ni, Au, Se, Sn, Ag, Fe, Hg, Zn आदि। जब ये धातु अस्थायी समस्थानिक के रूप में होते हैं तो आयनीकारक विकिरण देते हैं। ऐसा पाया गया है कि कार्सिनोजनिक प्रकृति धातु की ऑक्सीकरण अवस्था पर निर्भर नहीं करती है। लोहे के बर्तन में खाने से लोहे की अधिक मात्रा शरीर में प्रविष्ट हो जाने से लीवर का कैंसर हो सकता है।

कुछ कार्सिनोजनों को अगर उनके धात्विक लवणों में बदला जाये तो उनकी सक्रियता में वृद्धि हो जाती है। उदाहरण के लिए साइक्लोहेक्सिल सल्फामिक एसिड, Na और Ca लवण उदासीन pH पर जलीय विलयन में 98 प्रतिशत आयनित हो जाते हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि धातुओं के बहुतायत तथा उनकी कमी—दोनों ही कार्सिनोजिनेसिस के लिए उत्तरदायी होते हैं।

वैज्ञानिकों ने यह बताया है कि भोजन में जिंक (Zn) की कमी से कैंसर की वृद्धि कम होती है, जबकि दूसरी ओर इस प्रकार की विचारधारा भी रखी गयी है कि जिंक सल्फेट ($ZnSO_4$) की अधिकता से कैंसर की वृद्धि नियन्त्रित होती है और जिंक की यह अधिकता नये भरे गये उत्तक (tissue) में परिलक्षित होती है।

यह भी पाया गया कि ऐसी जगहों पर, जहाँ पर मिट्टी में धातु बहुतायत से पाये जाते हैं, जीवित प्राणियों में आमाशय का कैंसर विशेष तौर पर पाया जाता है। क्रिस्टलित रूप में कैल्शियम लवण (कैल्शियम ऑक्सैलेट) धीमे धीमे प्रभाव करता है तथा अन्त में यह मूत्राशय (bladder) कैंसर को जन्म देता है। ग्लूकोस, डेक्स्ट्रोस (संकुल), लोहा एवं सोडियम क्लोराइड जैसे उपयोगी पदार्थ भी विभिन्न परिस्थितियों में कैंसर उत्पन्न करते हैं।

लिगेन्ड (Ligand) कार्सिनोजन

कुछ पदार्थ अपनी लिगेन्ड की प्रकृति के कारण कार्सिनोजन की तरह कार्य करते हैं। ये पदार्थ लिगेन्ड की तरह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कार्य करते हैं और जलीय अथवा अजलीय वातावरण में उपापचय क्रियाओं द्वारा ?बल लिगेन्ड में परिवर्तित हो जाते हैं। ये पदार्थ वसा में घुलनशील होते हैं और इनमें समतलीय वलयें होती हैं। इनके दाता परमाणु दो-तीन परमाणुओं से पृथक रहते हैं, जिससे कि यह आसानी से पाँच या छह सदस्य किलेट Chelate) वलय बना सकें। साधारणतया यह देखा गया है कि लिगेन्ड की सान्द्रता बढ़ाने पर उसकी कार्सिनोजेनिक क्रिया बढ़ती है परन्तु जीवों में पाई जाने वाली यकृत कोशिकाएँ कार्सिनोजिनेसिस पर होम्योस्टेटिक नियन्त्रण क्रियाविधि के द्वारा नियन्त्रण कर सकती हैं उदाहरणार्थ—जिन प्राणियों की यकृत ट्रिप्टोफेन (tryptophane) पर निर्भर करती है वह अतिरिक्त ट्रिप्टोफेन लिगेन्ड को ट्रिप्टोफेन पायरोलेज के रूप में, हटा देती है।

यह देखा गया है कि दुर्दम्य कोशिका द्वारा लिगेन्ड कोशिकाएँ, सामान्य कोशिकाओं को पीछे छोड़ने के काम में ली जा सकती हैं। इस कार्य में शरीर को दिये जाने वाले आवश्यक धातु एवं अन्य खाद्य तत्वों को प्रयुक्त कर सकते हैं। यह देखा गया है कि कैंसर कोशिकाएँ एक विशेष सान्द्रता पर विषैले पदार्थ उत्सर्जित करती हैं। विषैले पदार्थ दुर्दम्य कोशिकाओं को प्रभावित करते हैं जबकि सामान्य कोशिकाएँ अप्रभावित ही रहती हैं। इनकी विषैली प्रकृति का कारण दुर्दम्य कोशिकाओं में डी एन ए बनाने की प्रक्रिया में बाधा डालता है। इसके विषैले प्रभाव को डिऑक्सी-साइटीडीन के द्वारा कम किया जा सकता है। अगर ट्यूमर कोशिका में डिऑक्सीसाइटीडीन अधिक मात्रा में हो तो विषैलेपन के लिए विष की मात्रा की ज्यादा जरूरत होती है और दूसरी तरफ अगर इसकी सान्द्रता कम है तो सामान्य कोशिकाएँ भी प्रभावित होने लगती हैं। यह विष लाल रुधिर कणिकाओं की आयु सीमा को 20 प्रतिशत कम कर देता है। यह देखा गया है कि लिगेन्ड की कमी कार्सिनोजिनेसिस के लिए उत्तरदायी है। उदाहरण के लिये खुराक में कोलिन और मेथिओनिन की कमी चूहे व मुर्गी में यकृत कैंसर उत्पन्न करती है। ट्रिप्टोफेन के उपापचयी उत्पाद मूत्राशय के कैंसर के लिए उत्तरदायी होते हैं।

कार्सिनोजिनेसिस की अन्तिम अवस्थाओं में जब कोशिकाएँ टूटती हैं तब लिगेन्ड की कमी से रुधिर में ताँबे (Cu) की सांद्रता लगभग दो या तीन गुना बढ़ जाती है।

एन्टीवायरल भेषजें कार्सिनोजन के रूप में

यह देखा गया है कि प्राणिओं में कैंसर विषाणुओं के कारण भी होता है। प्रति कैंसर भेषज प्रतिविषाणु अभिकर्मक होते हैं। परन्तु प्रतिविषाणु अभिकर्मक हमेशा प्रतिकैंसर भेषजें ही हों, यह जरूरी नहीं हैं। ये भेषजें स्थायी धातु किलेटों के रूप में होती हैं। कार्सिनोजिनेसिस की प्रक्रिया के अनन्तर यौगित के धातु एवं लिगेन्ड पृथक-पृथक हो जाते हैं। यौगिक का धातु भाग विषाणु के द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है जबकि विषैला लिगेन्ड दुर्दम्य वृद्धि के लिए उत्तरदायी होता है।

अर्बुद कोशिकाओं को नष्ट होने से बचाने में आठवें वर्ग के तत्वों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। लिविंगस्टोन नामक वैज्ञानिक के अनुसार चूहों में अर्बुद को 69 प्रतिशत कम करने के लिए Ni, Pd, Pt डाइऐलिल डाइथायोफॉस्फेट का उपयोग किया जा सकता है।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य धातुओं के उपसहसंयोजन रसायन एवं धातु संकुलों की कार्सिनोजेनिक अभिक्रिया में सम्बन्ध बताना है। इससे स्पष्ट होता है कि धातु हमारे शरीर के लिये अत्यन्त आवश्यक भी होते हैं और इन्हीं धातुओं के कारण ही बीमारी के संक्रमण की सम्भावना भी हो सकती है। कार्सिनोजन (लिगेन्ड) विभिन्न धातुओं के साथ संकुल बनाते हैं अतः इनके दुष्प्रभाव को कम करने के लिए मेटेलोथेरेपी (धातु चिकित्सा) की विधि भी विकसित की जा रही है।

इस विधि में कैंसर के उपचार तथा प्राणियों के परिरक्षण की अनेक सम्भावनयें हैं। आवश्यकता है इस प्रकार के अनुसंधानों को गति देने की ताकि हम जानलेवा कैंसर रोग पर विजय पा सकें।

●●

परिषद् का पृष्ठ

विज्ञान परिषद् में प्रदेश के शिक्षामंत्री (उच्च शिक्षा) डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह गौर का आगमन

हिन्दी के विकास और प्रचार-प्रसार के लिए शासन हर सम्भव प्रयास कर रहा है, यह विचार गत 6 सितम्बर को उत्तर प्रदेश सरकार के उच्च शिक्षा मंत्री **डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह गौर** ने विज्ञान परिषद् के अन्तरंगियों की बैठक में व्यक्त किया।

डॉ० गौर ने कहा कि हिन्दी के विकास को ध्यान में रखते हुए ही उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ का वार्षिक अनुदान दो लाख रुपयों से बढ़ाकर 50 लाख रुपये कर दिया गया है। उन्होंने विज्ञान परिषद् द्वारा निकलने वाली पत्रिका 'विज्ञान' की ग्राण्ट उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा मात्र दो हजार रुपये मिलने पर आश्चर्य व्यक्त किया। उन्हें यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि पत्रिका के लिए यह ग्राण्ट 1947 से अब तक मात्र दो हजार ही है। डॉ० गौर ने 'विज्ञान' पत्रिका के साथ-साथ विज्ञान परिषद् के विकास में हर सम्भव मदद का आश्वासन दिया।

उपर्युक्त बैठक की अध्यक्षता डॉ० **चन्द्रिका प्रसाद** ने की। कुलपति डॉ० **रामचरण मेहरोत्रा, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती**, डॉ० **शिवगोपाल मिश्र**, डॉ० **रामदास तिवारी**, डॉ० **हनुमान प्रसाद तिवारी, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव**, डॉ० **अशोक कुमार गुप्ता**. डॉ० **रामसुरंजनधर दुबे**, डॉ० **मुरारी मोहन वर्मा**, **श्री विजय जी** आदि इस सभा में उपस्थित थे।

प्रारम्भ में परिषद् के प्रधान मंत्री **डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी** ने परिषद् के अन्तरंगियों की ओर से शिक्षा मंत्री का स्वागत किया और उनके सामने परिषद् की अनेक समस्यायें रखीं।

अन्त में अध्यक्ष **डॉ० चन्द्रिका प्रसाद** ने कृतज्ञता ज्ञापित की।

—प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

यह महीना और पिछला महीना इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अध्यापकों और विद्यार्थियों का व्यस्ततम् समय रहा है। विश्वविद्यालय की परीक्षायें चल रही हैं। विज्ञान के स्नातक कक्षाओं की प्रयोगात्मक परीक्षायें भी चल रही हैं और तो और यह वर्ष प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी **प्रोफेसर बीरबल साहनी** का जन्मशती वर्ष है इस कारण विश्वविद्यालय और सम्बद्ध कॉलेजों के वनस्पति विज्ञान के अध्यापक और शोध छात्र कुछ अधिक ही व्यस्त हैं।

प्रो० साहनी की जन्मशती पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में 13-16 नवम्बर तक "प्रोफेसर बीरबल साहनी सेन्टेनरी इण्टरनेशनल कांफ्रेन्स" होगा। विषय है—"ग्लोबल एनविरानमेंट एण्ड डाइवर्सिफिकेशन ऑव प्लांट्स थ्रू जियोलॉजिकल टाइम"। इस सम्मेलन में विदेशों से लगभग 2 दर्जन वनस्पति-विज्ञानियों के भाग लेने की सूचना है। पंजीकरण 12 नवम्बर से प्रारम्भ हो जायेगा। कांफ्रेन्स 13-16 तक चलेगा और 17-19 तक सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त "बोटैनिकल एक्सकर्शन" का भी आयोजन है।

हमारे पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि विश्वविख्यात वनस्पति विज्ञानी **प्रो० दिव्यदर्शन पंत** जो प्रो० साहनी के विद्यार्थी भी रहे हैं, इस समारोह के प्रेरणास्रोत हैं और प्रो० पंत की संकल्पना को मूर्त रूप दे रहे

हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के वर्तमान प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉ० डी० डी० नौटियाल। डॉ० नौटियाल कर्तव्यपरायण, धुन के पक्के और समर्पित वनस्पतिविज्ञानी होने के साथ ही अपने मृदु स्वभाव से सभी का दिल जीत लेते हैं।

प्रो० नौटियाल किस समर्पित भाव से इस समारोह का संचालन कर रहे हैं उसका एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

प्रो० नौटियाल को आगामी अंटार्कटिक यात्रा दल के एक सदस्य के रूप में अंटार्कटिका के जीवाश्मों के अध्ययन के लिये चुन लिया गया था, किन्तु डॉ० नौटियाल ने इस समारोह में व्यस्त होने के नाते आगामी अंटार्कटिक यात्रा दल के साथ न जा सकने के लिए अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी है। सम्भवतः इसके बाद वाले दल के साथ जायें।

प्रो० बीरबल साहनी कौन थे, उन्होंने वनस्पति विज्ञान और देश के लिये क्या किया जैसी अनेक जिज्ञासाओं को शांत करेगा "विज्ञान" का नवम्बर 1991 अंक।

अक्टूबर माह का प्रथम सप्ताह देश में वन्य जीव संरक्षण सप्ताह के रूप में प्रतिवर्ष मनाया जाता है, अतएव वर्तमान अंक में आपको कुछ साहित्य वन्यजीवन से सम्बन्धित भी मिलेगी, किन्तु प्रारंपरिक लेखों से थोड़ा हट कर।

मैं एक बार पुनः स्मरण करा दूँ कि नवम्बर माह के अंत तक "जनसंख्या, पर्यावरण एवं विकास" विषय पर आपके लेखों की प्रतीक्षा रहेगी।

प्रस्तुत है "**फूलों में रंग और सुगन्ध**" विषय पर आपसे एक छोटी सी बातचीत।

मनुष्य का रंग विरंगे सुगंधित फूलों के प्रति आकर्षण सृष्टि के प्रारम्भ से ही चला आ रहा है। फूल वाले पौधों का जन्म इस धरती पर मानव के जन्म के बहुत पूर्व हो गया था। इस बात के साक्ष्य वैज्ञानिक प्रस्तुत कर चुके हैं कि आज से 65 मिलियन से 225 मिलियन वर्ष (65,000,000 से 225,000,000 वर्ष) पूर्व मध्य जीवी महाकल्प (Mesozoic Era) में उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों में फूलवाले पादप विकसित हुए। लगभग इसी समय अनेक प्रकार के कीटों (insects) और मक्खियों का भी प्रादुर्भाव हुआ। क्योंकि फूलों के नरजननांगों से निकले कणिकीय पराग (Pollen) को ये कीट भोजन के रूप में ग्रहण करते थे और बदले में अनजाने परागण-क्रिया (Pollination) भी सम्पादित कर जाते थे, जिसके बिना पेड़-पौधों में लैंगिक प्रजनन संभव नहीं। इस तरह फूलों के पर-परागण (Cross-Pollination) की क्रिया में कीटों का विशेष महत्व है। पुष्पों पर मँडराने वाले कीटों की एक विशेषता यह होती है कि उनमें गंध को पहचान लेने की गजब की क्षमता विद्यमान होती है।

अनेक प्रकार के कीट जो पराग को भोजन के रूप में नहीं ग्रहण करते वे फूलों के मकरंद कोष में संचित मकरंद (Nectar) के लिए फूलों पर आते हैं। ऐसे पुष्प जिनमें मकरंदकोष होते हैं, उनमें मकरंद के उपलब्ध होने का शंकेत फूलों की विभिन्न प्रकार की पंखुड़ियाँ करती हैं। लाल, पीले, नीले, गुलाबी, धारीदार, चित्तीदार फूल कीटों को अपनी ओर सहज ही आकृष्ट कर लेते हैं। इस प्रकार फूलों की पंखुड़ियों के रंग मकरंदकोषों का 'विज्ञापन' सा करते हैं। मकरंदपायी कीट पुष्पों का मकरंदपान कर सकें इसलिए उनमें ऐसे वर्ग के कीटों का विकास हुआ जो अपनी सुई जैसी शुण्डिका (proboscis) के माध्यम से मकरंद को फूलों से खींच सकें। इसका उदाहरण 'मेडागास्कर ऑर्किड' का पुष्प और मेडागास्कर में ही पाया जाने वाला शलभ (Hawkmoth) है। इस ऑर्किड में मकरंद पुष्पधर 20-35 सेन्टीमीटर (8-14 इंच) और कीट की शुण्डिका की लम्बाई 22½ सेन्टीमीटर (9 इंच) होती है।

ऑस्ट्रिया के प्रकृति विज्ञानी **कार्ल फॉन फ्रिश्च** (Karl Van Frisch) के अनुसार मधुमक्खियों में लाल रंग के प्रकाश की अंधता होती है किन्तु प्रकाश वर्णक्रम (Light Spectrum) के चार रंगों—पीले (नारंगी और पीत-हरित सहित), नील-हरित, नीला (बैंगनी और गुलाबी सहित) तथा पराबैंगनी रंगों—में पहचान कर सकती हैं। मधुमक्खियाँ विभिन्न प्रकार की शर्कराओं के स्वाद में भी भेद कर सकती हैं तथा सुगंधियुक्त, मधुर और पुदीने जैसी विशिष्ट गंधों के अन्तर को जानती हैं। यही नहीं, अपने विशेष प्रकार के नृत्यों द्वारा आपस में ऐसी सूचनाओं का भी आदान-प्रदान कर सकती हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि भोजन कितनी दूर और किस दिशा में उपलब्ध है।

ऐसे पुष्प जिनमें परागण मधुमक्खियों द्वारा सम्पादित होते हैं, वे दिन में ही खिलते हैं और अपने शोख रंगों व सुगंध के कारण शीघ्र ही मधुमक्खियों द्वारा ढूंढ़ लिए जाते हैं। ऐसे फूलों के पराग कण चिपचिपे, खुरदरी या कँटीली सतह वाले होते हैं और आसानी से मधुमक्खियों के शरीर से चिपक जाते हैं। किन्तु **इयुग्लोसा** (Euglossa) जाति के कुछ ऑर्किड की ओर नर मक्खी मकरंद के लिए नहीं बल्कि गंध के लिए जाता है, क्योंकि इस पुष्प में मकरंद नहीं पाया जाता है।

कुछ ततैया या बर्रे की जातियाँ पराग और मकरंद के लिये फूलों की ओर आकर्षित होती हैं। ये हल्के भूरे-गुलाबी रंग के फूल पसन्द करती हैं। **ब्लैस्टोफैगा** (Blastophaga) नामक नन्हीं ततैया अंजीर के फूलों का उपयोग उनमें अण्डे देने के लिए करती हैं।

तितलियों और शलभ या पतिंगों, **लेपिडोप्टेरा** (Lepidoptera) वर्ग के कीटों, का विकास वर्तमान फूलों के विकास के साथ हुआ है। लेपिडोप्टेरा में जिह्वा या शुण्डिका के माध्यम से भोजन सहज ही फूलों से मिल जाता है। कुछ विशेष प्रकार की तितलियाँ तो अपनी टाँगों के माध्यम से शर्करा का स्वाद चखने में निपुण होती हैं।

इन कीटों के अतिरिक्त फूलों के रंग और सुगंध के कारण अनेक प्रकार की चिड़ियाँ भी फूलों पर आती हैं। ये भी परागण में सहायक होती हैं। एक अनुमान के अनुसार 50 कुलों की 2000 चिड़ियाँ मकरंद, पराग और कीड़ों-मकोड़ों के लिए फूलों पर निर्भर हैं। इनमें हमिंगबर्ड, सनबर्ड, हनीईटर, ब्रशटंग पैरेट, ह्वाइट आई, फ्लावर पेकर, हनी क्रीनर (या शुगर बर्ड) आदि प्रमुख हैं।

चिड़ियों में कीटों की भाँति गंध को पहचानने की क्षमता तो नहीं होती किन्तु रंग की पहचान के मामले में ये अति विकसित होती हैं। चिड़ियों के चोंच की बनावट ऐसी होती है, जिससे वे मकरंद, पराग और कीड़े-मकोड़ों को भोजन के लिए आसानी से प्राप्त कर सकती हैं। इनमें लाल रंग को पहचानने की क्षमता अत्यधिक विकसित होती है। इसी कारण चिड़ियाँ शुद्ध लाल रंग के फूलों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होती हैं। लाल के अतिरिक्त नारंगी, नीले और सफेद पुष्प ये आसानी से देख सकती हैं। ऐसे फूल जिनमें परागण चिड़ियों द्वारा होता है वे गंधविहीन और दिनमें खिलने वाले होते हैं। किन्तु ऐसे फूल आकार में बड़े और मजबूत होते हैं क्योंकि कीटों की तुलना में चिड़ियों को अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। ऐसे फूलों में मकरंद अधिक मात्रा में बनता है। स्पियर लिली (Spear llly) या **डोरिऐन्थस** (*Dorianthus*) के फूलों के मकरंद से तो एक गिलास तक भरा जा सकता है। कुछ ऑर्किड, कैक्टस, अनन्नास और यूकेलिप्टस के नाम ऐसे ही फूलों में आते हैं।

मेडागास्कर में पाये जाने वाले लगभग 10 सेन्टीमीटर ऊँचे स्तनपायी माउस लैमूर (*Microcebus*) और कुछ विशेष प्रकार के चमगादड़ (*Macroglossus; Glossophagus*) अपना भोजन फूलों से प्राप्त करते हैं। रात में

(शेष पृष्ठ 19 पर)

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय
विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1991

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।

(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।

(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।

(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।

(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1991 से दिसम्बर 1991 माह के बीच प्रकाशित हो।

(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।

(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।

(8) वर्ष 1991 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1992 है।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के
शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है, यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०; आधा पृष्ठ 100.00 रु०; चौथाई पृष्ठ 50.00; आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 500.00 रु०।

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत; 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
प्रति अंक : 2 रु० 50 पैसे

प्रेषक : विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002